शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

जनवरी : १९५७ ☆ वर्ष बारहवाँ ☆ पौष, अंक : ९

: संपादक :
रामजी माणेकचंद दोशी वकील

प्रभुजी!

हम तेरे पुनीत पद चिह्नों पर आ रहे हैं....

२४८३ वर्ष पूर्व पावापुरी धाम में महावीर भगवान अभूतपूर्व सिद्धपद को प्राप्त हुए... भव्य जीवों का परम इष्ट और अन्तिम ध्येय ऐसे मोक्षपद को भगवान प्राप्त हुए...

'अहो! आज भगवान अनादि संसार से मुक्त होकर सादि-अनंत सिद्धपद को प्राप्त हुए और भगवान के युवराज गौतम गणधर ने केवलज्ञान प्राप्त किया...' यह सुनकर किस मुमुक्षु का हृदय आनंद से नहीं नाच उठेगा?!

अहो भगवान! आपने स्वाश्रय द्वारा ज्ञानसम्पदा प्राप्त की और हमें भी उस ज्ञानसम्पदा की प्राप्ति का उपदेश देकर आप मुक्तिपुरी सिधारे... हे प्रभो! हम वह उपदेश झेलकर, ज्ञानसम्पदा की ओर उन्मुख होकर आपको नमस्कार करते हैं, और आपके पथ पर... आपके पुनीत पदचिह्नों पर आ रहे हैं!

वार्षिक मूल्य
तीन रुपया

[१४१]

एक अंक
चार आना

श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ [सौराष्ट्र]

मुम्बई नगरी में धर्मप्रेम की बाढ़।

मुम्बई निवासियों को सबेरे का नित्यकर्म होता है, उसे शीघ्र निपटा कर जाड़े का मौसम होने पर भी शीघ्रता से उठकर अखबार आदि पढ़ना छोड़कर पूज्य श्री कानजी स्वामी के सबेरे ९.०० से होनेवाले प्रवचन में हजारों की संख्या में मुंबादेवी टेंक प्लोट में आधे घंटे पहले उपस्थित हो जाते हैं। बहिनें भी जाड़े के छोटे दिनों में कम फुरसत मिलने पर भी हजारों की संख्या में प्रवचन में आधे घंटे पहले हाजिर हो जाती हैं, बंबई के उपनगर बोरीवली, थाना तक के भी भाई–बहिन दोनों समय प्रवचन में भाग ले रहे हैं। श्री कानजीस्वामी के दोपहर के प्रवचन में ८ से १० हजार श्रोताओं की संख्या हमेशा होती है। रविवार को तो उपस्थिति बहुत अधिक बढ़ जाती है।

इस मोहमयी नगरी में मौज शौख का वातावरण होने से नाटक सिनेमादि देखने को इतनी भीड़ एकत्रित हो सकती है, परन्तु शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मा के गुणों की बात सुनने के लिये ट्राम, बस, ट्रेन आदि की भीड़ की परवाह न करते हुये प्रतिदिन हजारों श्रोता एक ही वक्ता के प्रवचन सुनने में इतने उत्सुक होकर पूर्ण शांति के साथ बड़े चाव से सुनते हैं। विरुद्ध अभिप्रायवाले भी सैंकड़ों की तादाद में आकर प्रेमपूर्वक लाभ लेते हैं। बड़ी संख्या में वकील–बैरिस्टार बड़े–बड़े लाखों के उत्तरदायित्ववाले उद्योगपति, व्यापारी और विद्वानवर्ग बड़ी जिज्ञासा से प्रतिदिन सुनने आते हैं। गुजरात सौराष्ट्र और दक्षिण प्रदेश के उच्च कक्षा के भाविक सज्जनगण भी आ रहे हैं।

इसका प्रधान कारण है:—श्री कानजीस्वामी का अजोड़ व्यक्तित्व। जो स्वयं अद्‌भुत प्रभावपूर्ण महान आत्मा हैं। अखण्ड ब्रह्मचर्य के तेज से आप रंगे हुये हैं। आपके श्वासोच्छ्‌वास में परमात्मा की रणकार उठती है, आपकी दिव्यवाणी अंतर की इतनी गहराई से निकलती है कि वह हृदय में पूर्ण स्पष्ट प्रतिभासित हो जाय। आपके दर्शन होते ही हम लोग किसी शांत आध्यात्मिक वातावरण में आ पहुँचे, ऐसी मानसिक शांति का अनुभव करते हैं। ऐसे विराट पुरुषोत्तम पुरुष मुंबई पधारे और घर बैठे ही गंगा मिले तो मुंबई हर्ष से न उछले ऐसा कैसे हो ? धन्य है उस महान् संत को।

(मुंबई समाचार से उद्‌धृत) !

आत्मधर्म

जनवरी : १९५७ ☆ वर्ष बारहवाँ ☆ पौष, अंक : ९

आत्मा कौन है और कैसे प्राप्त होता है ?

[२२]

(४२) क्रिया नय

श्री प्रवचनसार के परिशिष्ट में आचार्यदेव ने ४७ नयों से आत्मद्रव्य का वर्णन किया है, उस पर पूज्य गुरुदेव के विशिष्ट अपूर्व प्रवचनों का सार

[यह लेखमाला अंक १३९ से आगे की है सो वहाँ से संबंध मिलाकर पढ़ें।]

इस लेखांक की विशेषता

क्रियानय से और ज्ञाननय से आत्मा का स्वरूप क्या है—उसका वर्णन इस लेख में है; इस सम्बन्ध में अनेक जीव तरह-तरह के घोटाले करते हैं, इसलिये पूज्य गुरुदेव ने अनेक प्रकार से अत्यन्त स्पष्टीकरण करके यह विषय समझाया है; और साथ ही साथ पंचास्तिकाय की १७२ वीं गाथा का रहस्य भी समझाया है। उस गाथा की टीका में श्री आचार्यदेव ने निश्चय व्यवहार सम्बन्धी स्पष्टीकरण करके वीतरागभाव को ही तात्पर्य कहा है; किन्तु यथार्थ गुरुगम के अभाव से, और अपनी विपरीत दृष्टि के कारण कितने ही जीव उस गाथा और टीका का रहस्य समझे बिना विपरीत अर्थ करके मात्र अपनी विपरीत दृष्टि का पोषण करते हैं, इसलिये जिज्ञासु जीवों के हित के लिये पूज्य गुरुदेव ने इस प्रवचन में निश्चय-व्यवहार के सम्बन्ध में भी अति सुन्दर स्पष्टीकरण करके—ऐसा समझाया है कि साधकदशा में निश्चय के साथ-साथ व्यवहार भी होता है, तथापि साधक का (और सर्व शास्त्रों का) तात्पर्य तो वीतरागभाव ही है, और वह वीतरागभाव निश्चय के

आश्रय से ही होता है, इसलिये वास्तव में निश्चय के आश्रय से ही मोक्षमार्ग है, साधक को शुभ-रागरूप व्यवहार होता है, किन्तु वह मोक्षमार्ग नहीं है, उसका मोक्षमार्गरूप कथन करना तो मात्र उपचार है।

उपरोक्त विषय का मुख्य स्पष्टीकरण इस लेख की विशेषता है।

(४२) क्रियानय से आत्मा का वर्णन

[पंचास्तिकाय की १७२ वीं गाथा में कथित निश्चय-व्यवहार का स्पष्टीकरण भी इसमें आ जाता है।]

'आत्मद्रव्य-क्रियानय से अनुष्ठान की प्रधानता से जिसकी सिद्धि सधे-ऐसा है।' जिसप्रकार पत्थर के खम्भे पर सिर मारने से खून का विकार दूर होने के कारण किसी अंध पुरुष के नेत्र खुल जायें और निधानों की प्राप्ति हो, उसीप्रकार क्रियानय से अनुष्ठान की प्रधानता से सिद्धि हो—ऐसा यह आत्मा है।

यहाँ क्रियानय में अनुष्ठान की प्रधानता कही है, और अब ४३ वें ज्ञाननय में विवेक की प्रधानता रहेगी; आचार्यदेव ने इन ४२ और ४३ वें नयों में 'प्रधानता' शब्द का उपयोग किया है, वह ऐसा प्रगट करता है कि गौणरूप से दूसरा भी वर्तता है। यहाँ ४२ वें क्रियानय में अनुष्ठान की अर्थात् शुभ की प्रधानता कही है, वह ऐसा प्रगट करती है कि उसी समय सम्यग्ज्ञान का विवेक भी वर्तता है। शुभराग की प्रधानता से सिद्धि की साधना होती है—ऐसा क्रियानय से कहा; उससमय गौणरूप से शुद्धता है, उसका ज्ञान साथ ही हो, तभी क्रियानय सच्चा कहलाता है। शास्त्र में कहीं व्यवहार की प्रधानता का कथन आये, वहाँ अज्ञानी जीव उसका ऐसा विपरीत अर्थ करते हैं कि व्यवहार (शुभराग) करते-करते उसके आश्रय से परमार्थ की प्राप्ति हो जायेगी। किन्तु शास्त्र का ऐसा आशय नहीं है।

आशंका:—पंचास्तिकाय की १७२ वीं गाथा में तो ऐसा कहा है कि भिन्न साध्य-साधनरूप व्यवहार को न माने तो मिथ्यादृष्टि है—उसका क्या अर्थ ?

समाधान:—साधकदशा में शुद्धता के अंश के साथ भूमिकानुसार शुभराग भी आता है, उसका वहाँ ज्ञान कराया है और उपचार से उस राग को व्यवहारसाधन कहा है। उस व्यवहार के आश्रय से निश्चय की प्राप्ति होती है—ऐसा उसका आशय नहीं है, किन्तु साधक को वे दोनों साधन एकसाथ वर्तते हैं, उसका ज्ञान कराने के लिये वह कथन है। साधक को वे दोनों वर्तते हैं—ऐसा न

माने तो वह मिथ्यादृष्टि है—ऐसा समझना, किन्तु रागादि व्यवहार साधन के अवलम्बन से निश्चयसाधन की प्राप्ति हो जायेगी—ऐसा नहीं समझना चाहिये। जिसे निश्चय का भान नहीं है और भिन्न साध्य-साधन को भी स्वीकार नहीं करता, स्वच्छन्दपूर्वक पाप में वर्तता है—ऐसे जीव को मिथ्यादृष्टि कहा है। और साथ ही साथ वहाँ ऐसा भी कहा है कि जो निश्चय को तो नहीं जानते, तथा मात्र व्यवहारावलम्बी हैं, वे अकेले भिन्न साध्य-साधनभाव का ही अवलोकन करनेवाले सदैव खेदखिन्न वर्तते हैं और शुभरागरूप व्यवहार साधन में ही प्रवर्तमान रहते हैं; वे जीव दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता-परिणतिरूप ज्ञानचेतना को कभी प्राप्त नहीं कर पाते, किन्तु क्लेश की परम्परा को प्राप्त करके संसार में ही परिभ्रमण करते हैं।

पंचास्तिकाय की १७२ वीं गाथा इसप्रकार है:—

तह्मा णिब्बुदिकामो, रागं सवत्थ कुणदि मा किंचि।
सो तेण वीदरागो, भवियो भवसायरं तरदि।

—अर्थात् राग साक्षात् मोक्ष के अंतरायरूप है, इसलिये जो मोक्ष के कामी हैं, वे सर्वत्र किंचित् भी राग न करें, ताकि वे भव्य वीतराग होकर भवसागर से पार हो जायें।—ऐसा कहकर वहाँ वीतरागता का ही तात्पर्य बतलाया है। मूलसूत्र में एकदम वीतरागता की बात कही है, किन्तु अभी साधक को तो राग होता है इसलिये, टीका में आचार्यदेव ने भिन्न साध्य-साधन की बात कहकर उस राग का ज्ञान कराया है। 'कहीं किंचित् भी राग न कर'—ऐसा कहा, किन्तु साधक को राग तो होता है उसका क्या? तो कहते हैं कि उस राग को भिन्न साधन मान, अर्थात् आत्मा के वीतरागी रत्नत्रयरूप जो परमार्थ साधन है, उससे उस राग को भिन्न जान।

पहले तो, वीतरागता ही तात्पर्य है—इस बात की स्थापना करके, फिर राग का ज्ञान कराने के लिये उसे भिन्न साधन कहा है; 'भिन्न साधन' कहते ही उसमें ऐसा आ जाता है कि वह सच्चा साधन नहीं है। साक्षात् कारण तो वीतरागभाव ही है। निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप जो वीतरागभाव है, वही मोक्ष का कारण है; राग तो अंतर में दाह उत्पन्न करनेवाला है। जिसप्रकार चंदन का स्वभाव तो शीतल और सुगंधमय है, किन्तु उसी चंदन के वन में अग्नि का प्रवेश होने पर दाह उत्पन्न होती है; उसीप्रकार वीतरागभावरूपी जो चंदन वन है, उसमें रागरूपी अग्नि जलन उत्पन्न करती है, इसलिये 'उत्तम पुरुषों' को चाहिये कि उस राग को तात्पर्य न मानें किन्तु उसे हेय जानें, और वीतरागभाव को ही तात्पर्य मानें। तथा वह वीतरागभाव शुद्ध आत्मद्रव्य के अवलम्बन

से होता है, इसलिये शुद्ध आत्मा ही उपादेय है—ऐसा जानना। साधक को बीच में राग आये बिना नहीं रहता, किन्तु उसे भिन्न साधन कहकर स्वभाव से पृथक् बतलाया है। जो राग को तात्पर्य मानता है, वह 'उत्तम पुरुष' नहीं है अर्थात् सम्यग्दृष्टि नहीं है किन्तु पामर–मिथ्यादृष्टि है।

चैतन्यस्वभाव की जो शांत–अनाकुल अमृतधारा बहती है, उसमें राग का होना तो विपरीत दशा है—आकुलता है—अशांति है। अहो! अंतर में वीतरागी आनन्द से परिपूर्ण चैतन्य प्रवाह बह रहा है, उसमें राग के अंश से लाभ होता है—ऐसा मानना सो विपरीतता है। जिसने पूर्ण चैतन्य प्रवाह का अनादर करके राग का सत्कार किया, वह क्लेश प्राप्त करके संसार में ही परिभ्रमण करेगा। आत्मा के अरागी स्वभाव में जिसने राग से लाभ माना है, उसने चंदन के वन में आग लगाने जैसा किया है। राग को व्यवहार साधन कहा है, किन्तु कब? तो कहते हैं कि अंतर में निश्चय साधन वर्त रहा हो तब। राग आया, उसे व्यवहार कहनेवाला कौन है?—आरोप करनेवाला कौन है? जब त्रिकाली चैतन्य प्रवाह की दृष्टि से वीतरागी परमार्थ साधन प्रगट हुआ, तब साथ में प्रवर्तमान राग में उपचार करके उसे व्यवहार साधन कहा है। जहाँ त्रिकाली चैतन्यस्वभाव की दृष्टि नहीं है, वहाँ राग को व्यवहार साधन भी नहीं कहते। इसप्रकार राग को व्यवहार साधनपने का आरोप भी निश्चय दृष्टिवान सम्यक्त्वी को ही लागू होता है, मिथ्यादृष्टि को नहीं। जहाँ राग को व्यवहार साधन कहा, वहाँ भी शुद्ध द्रव्य के आश्रय से जो वीतरागभाव हो, वही तात्पर्य है; जो राग रहा है, वह तात्पर्य नहीं है। इसलिये आचार्य भगवान कहते हैं कि मोक्षमार्ग का सार और शास्त्रों के तात्पर्यभूत ऐसा वीतरागभाव जयवंत प्रवर्तमान हो! यह वीतरागभाव ही साक्षात् साधन है, और वह वीतरागभाव वस्तुस्वभाव की दृष्टि बिना नहीं होता। वस्तुस्वभाव की दृष्टि रखकर ही सारी बात है। वस्तुस्वभाव की दृष्टि न हो तो कुछ भी हाथ नहीं आ सकता।

यहाँ ४२ वें क्रियानय से अनुष्ठान की प्रधानता से सिद्धि होना कहा है, उसके साथ संधि रखनेवाली यह बात है, इसलिये यहाँ उसका विवेचन किया है। शुभरागरूप अनुष्ठान की प्रधानता से आत्मा की सिद्धि सधती है—इसप्रकार क्रियानय में व्यवहार की बात कही है—किन्तु उपरोक्तानुसार वीतरागी तात्पर्य लक्ष में रखकर अर्थात् वस्तुस्वभाव पर दृष्टि रखकर उसका तात्पर्य समझे, तभी क्रियानय सच्चा कहलाता है। यदि राग के ही आश्रय से लाभ मान ले तो उसका क्रियानय भी सच्चा नहीं है।

सम्यक्दर्शन–ज्ञान–चारित्ररूप मोक्षमार्ग का वर्णन चल रहा हो, वहाँ पूर्ण शुद्धतारूप मोक्ष

साध्य है और अपूर्ण शुद्धपर्यायरूप मोक्षमार्ग उसका साधन है। उस अपूर्ण दशा के साथ राग भी वर्तता है, इसलिये उस अपूर्ण पर्याय को जानते हुए राग को भी जानना चाहिये। द्रव्यदृष्टि के विषय में तो शुद्ध एकाकार आत्मद्रव्य ही साध्य है और ज्ञानप्रधान अधिकार में पूर्ण शुद्धपर्याय को भी साध्य कहा जाता है; अपूर्ण शुद्धपर्याय उसका साधन है, और वहाँ व्यवहाररत्नत्रय का जो शुभराग वर्तता है, उसे भी उपचार से साधन कहा जाता है; क्योंकि साधक को निश्चय-व्यवहार दोनों साथ होते हैं, वह बतलाना है। साधक को राग का परिणमन भी है, यदि न हो तो साधक भी न रहे; और उसी समय अविकारी ज्ञानचेतना का अविकारी परिणमन न हो तो भी साधकपना नहीं रह सकता। पूर्ण शुद्धता नहीं हुई किन्तु कुछ अंश में शुद्धता का विकास हुआ है और उसी के साथ कुछ रागादि अशुद्ध अंश भी वर्तता है; यदि उस राग को न जाने और शुद्धता के अंश को पूर्ण शुद्धता मान ले तो उसे मोक्ष की, साधक भाव की अथवा बाधक की पहिचान नहीं है। साधक को जितनी शुद्धता प्रगट हुई, वह निश्चय साधन है और वह निर्जरा का कारण है; तथा जो राग रहा है, उसे व्यवहार साधन कहा है; वह वास्तव में मोक्ष का नहीं किन्तु बंध का कारण है। अंशतः शुद्धता और अंशतः राग, इसप्रकार साधक को दोनों भाव एक साथ होते हैं। निश्चय साधन प्रगट न करे और एकान्त राग को ही साधन मानकर उससे लाभ माने तो वह अकेले बंध भाव में ही पड़ा हुआ मिथ्यादृष्टि है।

परम शुद्ध निश्चयनय से अर्थात् द्रव्यदृष्टि से तो शुद्ध द्रव्य जो कारणपरमात्मा है, वही मोक्ष का कारण है और वही साध्य है। ज्ञानप्रधान कथन में जो सम्यक्‌दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप शुद्ध पर्याय हुई, वह निश्चय कारण है और जो शुभराग रहा, वह उपचार के व्यवहार कारण है। इसतरह तीन प्रकार के कारण हुए—

(१) शुद्ध द्रव्य कारणपरमात्मा

(२) सम्यग्दर्शनादि शुद्ध पर्याय

(३) साधकदशा में प्रवर्तमान शुभराग।

निश्चयस्वभाव एक समय में परिपूर्ण है, उसे साधन बनाकर, अर्थात् उसका आश्रय करके जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट हुए, वह मोक्ष का निश्चय साधन है और उसके साथ के राग में उपचार करके उसे व्यवहार साधन कहा जाता है। सम्यग्दर्शन में ध्येयरूप तो शुद्ध द्रव्य ही है, इसलिये वही साध्य है। पर्याय अपेक्षा से मोक्ष साध्य है, किन्तु उस मोक्ष का साधन भी द्रव्य के ही आश्रय से होता है। द्रव्य का अवलम्बन करने से जो निर्मल पर्याय प्रगट हुई, वह पर्याय द्रव्य में ही

एकाग्र हो गई; इसलिये द्रव्य की दृष्टि में साधन और साध्य का भेद नहीं रहता; द्रव्य ही साधन है और वही साध्य है; साध्य-साधन के भेद का विकल्प भी दृष्टि में नहीं है। आत्मा में एक करणशक्ति त्रिकाल है, इसलिये आत्मा स्वयं ही सम्यग्दर्शन से लेकर मोक्षदशा का साधन होता है—ऐसा उसका स्वतंत्र स्वभाव है। अभेद की अपेक्षा से आत्मा स्वयं ही साध्य-साधन है। पर्याय अपेक्षा से मोक्ष, साध्य और निर्विकल्प रत्नत्रय, वह साधन है, तथा व्यवहार रत्नत्रय, वह उपचार से साधन है। पर को साधन कहना, वह निमित्त की अपेक्षा से कथन है; पर का तो आत्मा में अभाव है। शुद्ध द्रव्य की अपेक्षा से तो निश्चय रत्नत्रय भी व्यवहार साधन है। निश्चय रत्नत्रय भी द्रव्य के ही आश्रय से प्रगट होता है, इसलिये द्रव्य ही निश्चय कारण है। 'साधन' के नाम से लोग बहुत घोटाला करते हैं; कहते हैं कि जड़ की क्रिया अथवा शुभराग साधन तो है न ?—किन्तु भाई! जिसे परमार्थ साधन की खबर नहीं है, उसके रागादि को तो उपचार से भी साधन नहीं कहा जाता, उसके शुभराग को तो आचार्यों ने क्लेश की प्राप्ति और संसार परिभ्रमण का कारण कहा है। इसे समझ ले तो शास्त्रों का मर्म समझ में आ सकता है।

शास्त्रों का तात्पर्य क्या है ?

वीतरागता।

वह वीतरागता कैसे प्रगट होती है ?

—शुद्ध द्रव्य के आश्रय से ही वीतरागता प्रगट होती है।

इसलिये शुद्ध द्रव्य का आश्रय करना ही शास्त्रों का सार हुआ। शास्त्र पढ़-पढ़कर यदि शुद्ध द्रव्योन्मुख न हो तो उसने शास्त्रों का तात्पर्य नहीं जाना। भले ही कहीं-कहीं व्यवहार से राग को साधन कहा है, किन्तु वहाँ तात्पर्य क्या है ?—राग का तात्पर्य है या वीतरागता का ? राग को तो 'भिन्नसाधन' कहा है, तो फिर उस समय 'अभिन्न साधन' क्या है ? शुद्धद्रव्यस्वभाव का आश्रय करके जो निर्विकल्प सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट हुए, वह अभिन्न साधन है, वही परमार्थ साधन है, किन्तु अभी साधक को उसके साथ विकल्प भी वर्त रहा है, उसका ज्ञान करने के लिये उसे व्यवहार साधन अथवा भिन्न साधन कहा है। किंतु, वह शुभराग है, आस्रव है; इसलिये अरागी सम्यक्त्वादि हैं—ऐसा नहीं है। राग कारण और वीतरागता उसका कार्य - ऐसा नहीं है। यदि राग के कारण मोक्षमार्ग हो तो राग और मोक्षमार्ग दोनों एक हो जाते हैं, रागरहित निश्चय मोक्षमार्ग पृथक् नहीं रहता, उसका तो अभाव हो जाता है।—इसप्रकार राग से मोक्षमार्ग माने तो उसकी

पर्याय में राग रहित ऐसे रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग का अभाव हो जाता है। निश्चय रत्नत्रयरूप वीतरागी मोक्षमार्ग है, उसके साथ के राग को उपचार से ही साधन कहा है, वास्तव में तो राग, वह बंधमार्ग ही है।

पुनश्च—निश्चय रत्नत्रयरूप जो मोक्षमार्ग है, वह भी पर्याय के आश्रय से प्रगट नहीं होता, किंतु त्रिकालीद्रव्य के आश्रय से प्रगट होता है; इसलिये मोक्षमार्ग का मूलकारण तो द्रव्य है; उसी के आश्रय से अभिन्न साधन-साध्य प्रगट हो जाते हैं—ऐसा निर्णय करके, द्रव्य के अवलम्बन से जिसके निश्चय साधन का प्रारम्भ हुआ है, किन्तु अभी द्रव्य का पूर्ण अवलम्बन नहीं है, इसलिये राग भी वर्तता है, वहाँ उसे उपचार से साधन कहा जाता है। गुरुगम से इस मूलवस्तु को लक्ष्य में लिये बिना शास्त्रों का तात्पर्य समझ में नहीं आता। यहाँ ४२ वें क्रियानय से अनुष्ठान की प्रधानता से सिद्धि होना कहा है, उसका कोई विपरीत अर्थ न करे, इसलिये यह स्पष्टीकरण किया जाता है।

पंचास्तिकाय की १७२ वीं गाथा में भी व्यवहारनय की बात कही है, उसका कुछ लोग विपरीत अर्थ करते हैं, इसलिये उसका स्पष्टीकरण भी यहाँ आ जाता है।

(१) वहां तो, जो अज्ञानी वस्तुस्वभाव की दृष्टि नहीं करता और पर्याय के राग को नहीं जानता तथा स्वच्छंदपूर्वक पाप में प्रवृत्ति करता है—ऐसे एकान्त निश्चयाभासी जीव को दोनों पक्ष समझाने के लिये व्यवहार साधन की बात की है।

(२) किन्तु जो मात्र व्यवहार साधन को ही (शुभ-अनुष्ठान को ही) साधन मानता है और द्रव्यस्वभाव के अवलम्बन से निश्चय साधन प्रगट नहीं करता, वह जीव एकान्त व्यवहाराभासी मिथ्यादृष्टि है।

(३) साधक धर्मात्मा को अपने ज्ञानानंदस्वभाव के अवलम्बन से सम्यग्दर्शनादि निश्चय साधन तो प्रगट हुआ है, किन्तु अभी द्रव्यस्वभाव का परिपूर्ण आश्रय लेकर वीतरागता नहीं हुई; इसलिये राग होता है; वहाँ शुभराग, अशुभ से बचाता है; इसलिये उसे व्यवहार साधन कहा है। साथ में रागरहित दृष्टि का जोर वर्तता है, इसलिये उस शुभ में व्यवहार का आरोप आया है।

(४) अशुभ से बचने के लिये शुभराग होता है—ऐसा कहना भी व्यवहार है, वास्तव में तो उससमय उस शुभ का ही काल है,—अशुभराग होना था और उससे शुभराग ने बचा लिया-ऐसा नहीं है। तथा उस शुभ को साधन कहा, इसलिये उसके द्वारा निश्चय प्रगट हो जायेगा—ऐसा भी नहीं है। यदि राग को वास्तव में निश्चय का साधन माने तो वह मिथ्यादृष्टि है, और मिथ्यादृष्टि के

राग को तो व्यवहारसाधन भी नहीं कहा जाता।

यहाँ तो साधक की बात है; साधक को स्वभाव की दृष्टि है और द्रव्य का आश्रय पूर्ण नहीं हुआ है, वहाँ देव-गुरु-शास्त्र के प्रति बहुमान का उल्लास और व्रतादि का भाव आता है, किन्तु अंतर की दृष्टि में वास्तव में ज्ञानानन्दस्वभाव के अतिरिक्त किसी का बहुमान नहीं है। स्वभाव में बिलकुल अभेदता हो जाये तो द्रव्य और मोक्षपर्याय के बीच भेद न रहे और राग भी न रहे। किन्तु अभी स्वभाव में बिलकुल अभेदता नहीं हुई है, इसलिये निचलीदशा में राग होता है, उसे ज्ञानी जानते हैं और क्रियानय से उस राग में मोक्ष साधन का आरोप भी करते हैं; किन्तु उस क्रियानय के समय ही साथ में ज्ञाननय का ज्ञान वर्तता है, इसलिये चैतन्यस्वभाव का अवलम्बन रखकर व्यवहार के अवलम्बन को (शुभ अनुष्ठान को) उपचार से साधन कहा है; चैतन्यस्वभाव के अवलम्बन बिना मात्र व्यवहार का अवलम्बन तो व्यवहार से भी साधन नहीं है। राग के समय धर्मात्मा को मात्र राग ही नहीं वर्तता, किन्तु उस समय भी दृष्टि में तो शुद्ध चैतन्य द्रव्य का ही आश्रय बना है; इसलिये राग रहित रमणता भी वर्तती है; यदि वैसी दशा न हो तो साधकपना भी नहीं रहता।

जिसप्रकार अंक के बिना रखे गये शून्यों का मूल्य शून्य ही होता है, उसीप्रकार ज्ञायक द्रव्य एक समय में परिपूर्ण प्रभुता से भरपूर है, उसके आश्रय से श्रद्धा-ज्ञान के अंक रखे बिना व्यवहार के समस्त राग शून्यवत् हैं—उसमें किंचित् भी उपचार करने योग्य मोक्ष साधन नहीं है। ज्ञायक -स्वभाव की दृष्टि में मोक्ष साधन का प्रारम्भ होने पर किस भूमिका में कैसा व्यवहार होता है, उसे ज्ञानी जानता है। ज्ञानी जानता है कि मेरा ज्ञानानन्दस्वभाव एक समय में परिपूर्ण है, उसी के आश्रय से ही मेरा मोक्ष साधन है; राग के आश्रय से मेरा मोक्ष साधन नहीं है। शुद्ध चैतन्य द्रव्य में एकाग्रता से ही निर्विकल्प शांत दशा प्रगट होती है; पर के, राग के अथवा पर्याय के आश्रय से निर्मल दशा प्रगट नहीं होती; इसलिये ज्ञायकद्रव्य को दृष्टि में लेकर उसमें एकाग्र होना चाहिये:—यही धर्म की मुख्य कुंजी (Master Key) है; इसके अतिरिक्त जो भी धर्म का साधन कहलाता हो, वह सब उपचार से है—ऐसा समझना।

★★★

यहाँ प्रमाण पूर्वक के नयों से आत्मा का वर्णन चल रहा है, उसमें इस समय क्रियानय से वर्णन हो रहा है। यह नय भी आत्मोन्मुख होकर आत्मा के धर्म को जानता है। क्रियानय से अनुष्ठान की प्रधानता से सिद्धि कही, उसका अर्थ ऐसा है कि अन्तरस्वभाव के आश्रय से साधक के अंशत:

शुद्धता विकसित हुई है और उसके साथ शुभरागरूप अनुष्ठान भी वर्त रहा है, उस राग को जानते समय जो अरागपरिणमन है, उसे गौण रखकर, अनुष्ठान की प्रधानता से कथन किया है और उसमें साधन का उपचार किया है। उस समय साधक को भान है कि—द्रव्य की प्रधानता से ही मुक्ति है। साधक की दृष्टि में निरन्तर शुद्ध द्रव्य की ही प्रधानता वर्तती है। दृष्टि में से किसी भी समय यदि द्रव्य की प्रधानता छूटकर पर्याय की या राग की मुख्यता हो जाये तो वहाँ सम्यग्दर्शन भी नहीं रहता। इसलिये शुद्ध स्वभाव की एक-सी अखण्ड दृष्टि रखकर यह सब बात है। क्रियानय में अनुष्ठान की प्रधानता के समय शुद्धता की गौणता है, किन्तु दृष्टि में तो उस समय शुद्ध चैतन्यस्वभाव की ही मुख्यता है।

जिसप्रकार-बारह भावनाओं को संवर कहा है; वहाँ 'शरीरादि अनित्य है, सारा संसार अशरण है'—इत्यादि प्रकार से बारह भेदों के अवलम्बन में तो परलक्ष और राग होता है, वह कहीं संवर नहीं है; किंतु उस समय अंतर में चिदानन्दस्वभाव की दृष्टि वर्तती है और उस दृष्टि के बल से राग टूटकर वीतरागता बढ़ती जाती है, वह संवर है। वहाँ निमित्त से बारह भावनाओं को संवर कहा है; उसीप्रकार यहाँ भी विकल्प तोड़कर स्वभाव का आश्रय करना ही सच्चा मोक्ष साधन है। स्वभावोन्मुख होने से पहले शुभ अनुष्ठान का विकल्प था, उसे भी आरोप से साधन कह दिया है; किन्तु ऐसा आरोप किसे लागू होता है?—तो कहते हैं कि जो उस राग का निषेध करके अभेद स्वभावोन्मुख हो, उसी को वह आरोप लागू होता है। राग के अवलम्बन से ही लाभ मानकर जो वहाँ रुक जाये, उसे तो राग में साधन का आरोप भी लागू नहीं होता। यथार्थ वस्तु प्रगट हुए बिना आरोप किसका?

क्रियानय के दृष्टान्त में ऐसा कहा था कि अंध का सिर पत्थर से टकराने पर उसका 'खून का विकार' दूर हुआ और उसके नेत्र खुल गये, तथा उसे 'निधान प्राप्त हुआ'—इस पर से एकान्त पकड़ कर कोई अंधा खम्भे से सिर टकराये तो वह कहीं निधान प्राप्ति का उपाय नहीं है, उसका तो सिर फटने से खून निकलेगा। भाई! जब भीतर से खून का विकार दूर हुआ, तब आँखें खुलीं और निधान प्राप्त हुआ है; उसीप्रकार यहाँ अनुष्ठान की प्रधानता से सिद्धि होना कहा, इसलिये कोई अज्ञानी जीव एकान्त ग्रहण करके शुभराग के अवलम्बन से ही नेत्र खुल जाना और चैतन्यनिधान का प्राप्त होना माने तो उसे मोक्ष का साधन नहीं होता, किन्तु मिथ्यात्व का सेवन होकर संसार भ्रमण ही होता है। अंधे के खून का विकार दूर हुआ, तब नेत्र खुले और निधान प्राप्त हुए; उसी प्रकार हे

भाई! तू रागादि विकार की रुचि छोड़ और शुद्ध चैतन्य द्रव्य का आश्रय कर, तो उसके आश्रय से तेरी दृष्टि खुल जाये और तुझे अपने चैतन्य निधान दिखाई दें। वास्तव में अंधे के खून का विकार दूर होने से नेत्र खुले और निधान प्राप्त हुए, तब खम्भे से सिर टकराने को भी निमित्त रूप से उसका कारण कहा है; उसीप्रकार स्वभाव के आश्रय से राग की रुचिरूपी विकार दूर होकर 'अरागी दृष्टि खुलने से' 'चैतन्य के निधान दृष्टिगोचर हुए'—वहाँ शुभ अनुष्ठान को भी उपचार से निमित्त रूप साधन कहा—ऐसा जानना, वह क्रियानय है। वास्तव में द्रव्य के आश्रय से ही दृष्टि खुलती है, राग के अवलम्बन से नहीं खुलती—ऐसे ज्ञान के बिना क्रियानय भी सच्चा नहीं होता।

नय के समय प्रमाण साथ ही होता है; यदि प्रमाण न हो तो नय सच्चा नहीं है। क्रियानय से अनुष्ठान की प्रधानता करके उसे साधन कहा, उसी समय अभेद स्वभाव के आश्रय से रागरहित शुद्धता का अंश प्रगट हुआ है—वह निश्चय साधन है, उसका ज्ञान भी साथ ही वर्तता है। यदि ऐसा न हो तो प्रमाण नहीं होता। व्यवहार साधन के समय द्रव्य के आश्रयवाला निश्चय साधन भी है; यदि निश्चय साधन को न जाने और मात्र राग से-व्यवहार साधन से ही कल्याण माने तो एकान्त मिथ्यात्व हो जाता है।

प्रवचनसार के इस परिशिष्ट में प्रारम्भ की भूमिका में ही कहा है कि—आत्मा प्रमाण पूर्वक स्वानुभव द्वारा ज्ञात होता है और अंत में भी कहेंगे कि—स्याद्वाद अनुसार नय द्वारा देखो अथवा प्रमाण द्वारा, तथापि स्पष्ट अनंत धर्मात्मक निज आत्मद्रव्य अंतर में शुद्ध चैतन्यमात्र दृष्टिगोचर होता है। किसी भी नय से देखने का तात्पर्य शुद्ध चैतन्य द्रव्य को जानना ही है। क्रियानय का फल भी यही है कि—अंतर में राग से पार शुद्ध चैतन्यस्वभाव की दृष्टि करना। मात्र शुभराग को ही देखे और शुद्ध चैतन्यस्वभाव को उसी समय दृष्टि में न ले तो उसका क्रियानय भी मिथ्या है।

वस्तु स्वरूप स्वयं ही ऐसी पुकार करता है कि—हम एकसमय में अनंत धर्मों से परिपूर्ण हैं, क्षणिक राग जितने हम नहीं हैं; हमारी चैतन्य प्रभुता अनंत धर्मों से भरपूर है।—ऐसी चैतन्यवस्तु को जानकर उसका स्वानुभव करे तो 'आत्मा कौन है'—वह ज्ञात हो, और उसकी प्राप्ति का उपाय हाथ आये। यहाँ एक-एक धर्म की मुख्यता से वर्णन किया है, किन्तु एक धर्म की मुख्यता के समय अनंत धर्मात्मक चैतन्यवस्तु को लक्ष में रखकर यह वस्तु समझना है।

भगवान आत्मा, जड़ से भिन्न चैतन्य मूर्ति है, उसमें एकसाथ अनंत धर्मों को धारण करने की शक्ति है, और ज्ञान में एक साथ अनंत धर्मों को जानने की शक्ति है; किन्तु छद्मस्थ की वाणी में

एकसाथ अनंत धर्मों का कथन नहीं हो सकता। केवली भगवान का वाणी के साथ ऐसा निमित्त-नैमित्तिक संबंध है कि—वाणी में भी एकसाथ परिपूर्ण आता है; किन्तु छद्मस्थ का ऐसा निमित्त-नैमित्तिक संबंध है कि वाणी में भी एकसाथ परिपूर्ण नहीं आता। साधक की प्रतीति में तो परिपूर्ण आया है किन्तु अभी पूर्ण ज्ञान विकसित नहीं हुआ है, इसलिये वाणी में भी पूर्ण नहीं आता;—भले ही अल्प आये किन्तु उसमें विपरीतता नहीं आती। ज्ञानी होने पर भी वाणी का योग न हो—ऐसा हो सकता है, किन्तु यदि वाणी हो तो उसमें यथार्थ प्ररूपणा ही आये; प्रयोजनभूत तत्त्वों की विपरीत प्ररूपणा आ ही नहीं सकती—ऐसा नियम है। जिसकी वाणी में प्रगटरूप से मूलतत्त्वों की विपरीत प्ररूपणा आती है, वह तो मिथ्यादृष्टि है—ऐसा जानना। अज्ञानी को चाहे जितना ज्ञान का विकास हो, तथापि उसका सारा ज्ञान मिथ्या है, क्योंकि उसने मूलवस्तु को नहीं जाना है; ज्ञानी को ज्ञान का विकास कदाचित् अल्प हो, तथापि उसका सारा ज्ञान सम्यक् है; क्योंकि उसने मूलभूत चैतन्यवस्तु को यथार्थतया स्वानुभव से जाना है। इसलिये जिज्ञासु का प्रारम्भ से ही अंतर में आनन्दस्वभाव से परिपूर्ण चैतन्य वस्तु को ज्ञान में लेने का मूलभूत प्रयत्न करना ही कर्तव्य है।

यहाँ आचार्यदेव, जिज्ञासु जीव को आत्मा का स्वरूप समझाते हैं। जिसे आत्मस्वरूप समझने की सच्ची जिज्ञासा जागृत हुई है, ऐसे आत्मार्थी को समझ में यह बात न आये—ऐसा नहीं हो सकता। आत्मा में अनंत धर्म हैं, वे सब चैतन्य सामान्य द्वारा व्याप्त हैं, इसलिये उसके किसी भी धर्म को जानते समय चैतन्य सामान्य का भान रहना ही चाहिये। आत्मा एक समय में अनंत धर्मोंवाला है, वह चैतन्यस्वभाव से व्याप्त है, इसलिये जागृत स्वभाववाला है। नय हो या प्रमाण हो, उन दोनों में ऐसी जागृत चैतन्यसत्ता देखना ही प्रयोजन है। स्वानुभव प्रमाण द्वारा अनंत धर्मात्मक आत्मा को जानने के पश्चात् एक-एक धर्म का ज्ञान करना, सो नय है। नय द्वारा एक-एक धर्म का ज्ञान करके, फिर उन सब नयों का ज्ञान एकत्रित करके प्रमाण होता है—ऐसा नहीं है, किन्तु अनंत धर्मों से अभेदरूप ऐसी चैतन्यवस्तु को जानने से जो प्रमाणज्ञान हुआ, उस प्रमाणपूर्वक वस्तु को एक धर्म को प्रधान करके जाने, वह नय है। क्षणिक पर्याय का विकार, और उसीसमय अनंत धर्म स्वरूप ऐसा शुद्ध चैतन्य द्रव्य—इसप्रकार दोनों का अस्तित्व जानने से प्रमाणज्ञान होकर आत्मा का स्वानुभव होता है। जिस ज्ञान ने क्षणिक राग और त्रिकाली शुद्ध द्रव्य—दोनों को जाना, वह ज्ञान त्रिकाली शुद्धद्रव्य की ही महिमा करके उस ओर एकाग्र हो जाता है; इसलिये शुद्ध आत्मा का स्वानुभव होता है। प्रमाणज्ञानपूर्वक ऐसा स्वानुभव हो, तभी सचमुच आत्मा को जाना कहलाता है

और तत्पश्चात् ही सच्चे नय होते हैं। प्रमाण से आत्मा को जाने बिना मात्र राग को जानने का प्रयत्न करे तो उस राग के साथ एकत्वबुद्धि होकर एकान्त हो जाता है, वह मिथ्यात्व है। धर्मी को पूर्ण आत्मवस्तु का ज्ञान होने से राग को जानते समय राग के साथ एकत्वबुद्धि नहीं होती, किन्तु अनंतधर्म के पिण्डरूप शुद्ध चैतन्य के साथ ही एकत्वबुद्धि रहती है।

धर्मी जानता है कि क्रियानय से देखने पर अनुष्ठान की प्रधानता से सिद्धि की साधना हो—ऐसा आत्मा है। अभी अपनी पर्याय में व्यवहाररत्नत्रय आदि का शुभराग वर्तता है—शुद्ध चैतन्यस्वभाव की दृष्टि हुई है, वह तो साथ है ही; उस दृष्टिपूर्वक अधिकांश राग तो दूर हो गया है और शेष राग भी क्रमशः दूर होकर शुद्धता हो जायेगी। इसलिये धर्मी के उस शुभ अनुष्ठान को निमित्त मानकर कथनपद्धति में उसकी प्रधानता से सिद्ध होना कहा है। ऐसा भी आत्मा का एक धर्म है—इसलिये शुद्ध उपादान पर दृष्टि रखकर धर्मी जीव जानता है। सामान्य चैतन्यस्वभाव की दृष्टि स्थायी रखकर धर्मी जीव नय में धर्मों को मुख्य-गौण करके जानता है, और उसे जानकर भी वस्तु की शुद्धता की ही साधना करता है।

साधक को शुभराग है, वह भी आत्मा की पर्याय का अंश है, अशुद्ध निश्चय से वह राग आत्मा का है। शुद्ध निश्चयरूप द्रव्य के आश्रय से साधक अपने कल्याण की साधना कर रहा है, वहाँ अशुद्ध निश्चयरूप शुभराग को जानने पर उसकी प्रधानता से सिद्धि होना उपचार से कहा जाता है, क्योंकि वीतरागी दृष्टिपूर्वक उस शुभ के समय भी अशुभराग दूर हुआ, उस अपेक्षा से शुभ को ही साधन कह दिया।—ऐसा नयविवक्षा का कथन है। किन्तु अंतर के शुद्ध स्वभाव की दृष्टि बिना मात्र शुभराग से सिद्धि हो जाये—ऐसा कदापि नहीं होता; यह मुख्य बात भूलना नहीं चाहिये।

आत्मा के परमार्थ स्वभाव का आश्रय लेना ही सिद्धि का साधन है, किन्तु साधक को राग के समय अशुभ से बचने के लिये (अशुभवंचनार्थ) व्यवहाररत्नत्रयादि का शुभराग आता है, इसलिये क्रियानय में व्यवहार प्रधानता से ऐसा भी कहा जाता है कि—व्यवहाररत्नत्रय साधन और निश्चयरत्नत्रय, वह साध्य; क्रियानय से ऐसे धर्म को जानते समय शुद्ध चैतन्य द्रव्य के अवलम्बन से निश्चय साधन का परिणाम भी साथ ही वर्त रहा है।—इसप्रकार साधकदशा में निश्चयसहित जो व्यवहाररत्नत्रय वर्तता है, उसका क्रियानय ज्ञान करता है। अब अगले बोल में ज्ञाननय से वर्णन करेंगे।

★★★

शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मा में अनंत धर्म हैं। नय भले ही उन धर्मों को मुख्य-गौण करके जाने, किन्तु कहीं वस्तु में वे धर्म मुख्य-गौण रूप से विद्यमान नहीं हैं; वस्तु में तो सर्व धर्म एकसाथ ही विद्यमान हैं। शुद्धस्वभाव का अवलम्बन लेने से जहाँ साधकदशा प्रगट हुई, वहाँ शुभराग होता है और राग घटते-घटते शुद्ध आत्मारूप निधान की प्राप्ति हो जाती है, वहाँ शुभ की प्रधानता से सिद्ध होना कहा जाता है—ऐसा भी आत्मा का एक धर्म है और क्रियानय उसे जानता है। क्रियानय में शुभ की प्रधानता कही, वहाँ उसके साथ गौणरूप से सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान-रमणतारूप शुद्धता भी विद्यमान ही है; यदि वह शुद्धता न हो और मात्र शुभराग ही हो तो उस शुभ की 'प्रधानता' नहीं कही जा सकती। 'प्रधानता' शब्द ही दूसरे का अस्तित्व प्रगट करता है। क्रियानय से शुभ अनुष्ठान की प्रधानता की, उसी समय दूसरे अनंत धर्म आत्मा में विद्यमान हैं। 'किसी आत्मा को शुभराग की प्रधानता से सिद्ध होती है और किसी को ज्ञान की प्रधानता से' इसप्रकार भिन्न-भिन्न आत्माओं का एक-एक धर्म नहीं है, किन्तु एक ही आत्मा में यह सब धर्म एक साथ विद्यमान हैं। क्रियानय से देखने पर आत्मा को शुभ अनुष्ठान की प्रधानता से सिद्धि हुई—ऐसा उपचार की योग्यता लक्ष में आती है; यहाँ मात्र एक-एक धर्म को जानने का तात्पर्य नहीं है, किन्तु अनंतधर्मों के पिण्डरूप चैतन्यवस्तु का यथार्थ निर्णय करके उसका स्वानुभव करने का तात्पर्य है। एक-एक धर्म की प्रधानता से कहना, वह वचन विलास है और उसमें राग का विकल्प है। एक धर्म को लक्ष में लेने से मुक्ति नहीं होती, मुक्ति तो अनंत धर्मों के पिण्डरूप आत्मद्रव्य की ओर देखकर उसमें एकाग्र होने से ही होती है। आत्मा कहीं एक ही नय के विषय जितना नहीं है, आत्मा में तो अनंत धर्म होने से वह अनंत नयों का विषय होता है, इसलिये अनंत नय स्वरूप जो श्रुतज्ञान प्रमाण है, उसके द्वारा आत्मा का स्वानुभव होता है। इसप्रकार आत्मा को जाने बिना मात्र उसे क्रियानय के विषय जितना ही मान ले तो वह एकान्त है। प्रमाण सम्पूर्ण आत्मा को देखता है और नय उसके एक धर्म को प्रधान करके देखता है। प्रमाणपूर्वक ही नय होते हैं; साथ में विद्यमान अन्य अनंत धर्मों को माने बिना एकान्त एक धर्म को ही माने तो वह नय मिथ्या है। इस सम्बन्ध में आचार्यदेव कहेंगे कि—'पर समयों का अर्थात् मिथ्यामतियों का वचन सर्वथा (एकान्त) कहा जाता है, इसलिये वास्तव में वह मिथ्या है; और जैनों का अर्थात् सम्यग्दृष्टि—ज्ञानियों का वचन कथंचित् (अपेक्षा सहित) कहा जाता है; इसलिये वास्तव में सम्यक् है।

प्रश्नः— आत्मा के अनंत धर्मों में से एक धर्म को लक्ष में लेकर पुरुषार्थ करे तो?

उत्तरः—अनंत धर्मों के पिण्डरूप धर्मी को लक्ष में लिये बिना उसके एक धर्मी का भी सच्चा ज्ञान नहीं होता और एक धर्म के लक्ष से मोक्ष का पुरुषार्थ नहीं होता। एक धर्म को यथार्थतया लक्ष में लेने जाये, वहाँ धर्मी ऐसा आत्मद्रव्य लक्ष में आ जाता है, और उस शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मा के आश्रय से सम्यग्दर्शनादि मोक्षमार्ग का पुरुषार्थ हो जाता है। एक-एक धर्म के भेद को देखने से धर्म का विकास नहीं होता, किन्तु अनंतधर्मों से अभेद ऐसा आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप है, उसके सन्मुख देखने से समस्त धर्म निर्मलतारूप से विकसित हो जाते हैं। अनंतधर्मात्मक पूर्ण द्रव्य लक्ष में लेकर अनेकान्तप्रमाण हुए बिना द्रव्य के एक अंश का (एक धर्म का) ज्ञान भी सच्चा नहीं होता। यदि प्रमाण के विषयरूप सम्पूर्ण वस्तु को पहिचाने, तभी उसके अंश के ज्ञान को सच्चा नय कहा जाता है; प्रमाण के बिना नय सम्यक् नहीं होता। जो स्वयं मोक्षमार्ग नहीं है, साधन नहीं है परन्तु उपचार नय से कहा जाता है कि अनुष्ठान की प्रधानता से सिद्धि होती है, उस अपेक्षा का ज्ञान कराते समय उस नय के साथ का प्रमाण ज्ञान अनंत धर्मोंवाले शुद्ध आत्मद्रव्य को भी देखता है। नय के साथ जो प्रमाण ज्ञान है, वह एक धर्म को ही नहीं देखता किन्तु अनंत धर्मों के पिण्डरूप शुद्धचैतन्य द्रव्य को देखता है। यदि शुद्ध आत्मद्रव्य को न देखे और मात्र राग को ही देखे तो वहाँ प्रमाणज्ञान नहीं है किन्तु मिथ्याज्ञान है और उसका नय भी मिथ्या है।

यह जो धर्म कहे हैं, वे सब अंश हैं, और उन सब धर्मों को धारण करनेवाला भगवान् आत्मा है; भावश्रुतप्रमाण से उस आत्मा के ज्ञानपूर्वक उसके एक धर्म का ज्ञान, वह नय है। जिसप्रकार सुवर्ण की पहिचानपूर्वक उसके पीलेपन का ज्ञान करे तो वह सच्चा है; किन्तु सुवर्ण के ज्ञान बिना मात्र पीलेपन का ज्ञान करने जावे तो पीतल आदि भी पीले हैं; इसलिये सुवर्ण को जाने बिना उसके पीलेपन का ज्ञान भी सच्चा नहीं होता। सुवर्ण वस्तु है और पीलापन उसका एक धर्म है। उसीप्रकार आत्मवस्तु में अनंतधर्म हैं; उसके ज्ञानपूर्वक एक धर्म का ज्ञान होता है; किन्तु पूर्ण आत्मा के लक्ष बिना एक ही धर्म पर भार देने जावे तो वहाँ मिथ्यानय हो जाता है।

देखो, 'ज्ञान वह आत्मा'—इसप्रकार ज्ञान का भेद करके लक्ष में ले, किन्तु ज्ञान तो दूसरे आत्माओं में भी है, इसलिये उसमें दूसरे आत्माओं से अपना भिन्नत्व तो लक्ष में नहीं आया; किंतु 'ज्ञान किसका?'—तो कहते हैं कि मेरा ज्ञान है, वह मेरे आत्मा के साथ अभेदत्व रखता है;—इसप्रकार ज्ञान को आत्मा के साथ अभेद करके आत्मा का स्वसंवेदन करने से आत्मा यथार्थतया ज्ञात होता है और इसप्रकार आत्मा को जान लेने के पश्चात् उसके धर्मों का सच्चा ज्ञान

होता है। पूर्ण वस्तु के ज्ञान बिना 'यह अंश इसका है'—ऐसा ज्ञान नहीं होता। अंश किसका ?—भाग किसका ? तो कहते हैं कि सम्पूर्ण वस्तु का। उसीप्रकार यह धर्म किसका ?—तो कहते हैं कि पूर्ण आत्मा का। इसप्रकार प्रमाण से आत्मा को जाने बिना नय नहीं होता; धर्मी अखंड वस्तु के ज्ञान बिना उसके धर्म की सच्ची पहिचान नहीं होती। धर्मी को पहिचाने बिना 'यह धर्म किसका है ?' उसका ज्ञान नहीं होता, इसलिये वहाँ एकान्त मिथ्यानय होता है। धर्मी के लक्षपूर्वक (वस्तु की दृष्टिपूर्वक) उसके किसी एक धर्म को प्रधान करके जाने तो वह सम्यक्‌नय है।

एक आत्मा को विवेक की प्रधानता से सिद्धि हो, और दूसरे आत्मा को विवेक के बिना शुभ अनुष्ठान की प्रधानता से सिद्धि हो—ऐसा नहीं है; किन्तु एक ही आत्मा में समस्त धर्म एक साथ विद्यमान हैं। उनमें नय एक धर्म को मुख्य करके देखे, उस समय प्रमाणरूप वस्तु का ज्ञान भी गौणरूप से विद्यमान है। एक धर्म अकेला नहीं रहता किंतु दूसरे अनंतधर्मों के साथ विद्यमान है, उसका भान हुए बिना एक धर्म का ज्ञान सच्चा नहीं होता।

'क्रियानय द्वारा अनुष्ठान की प्रधानता से जिसकी सिद्धि सधती है... ऐसा है।'—ऐसा कौन है ?—ऐसा एक धर्म नहीं है किन्तु आत्मद्रव्य है; उस आत्मद्रव्य का यह तो एक धर्म है। दूसरे अनंत धर्म उसके साथ ही गौणरूप से विद्यमान हैं। यदि वे गौणरूप से न हों तो 'अनुष्ठान की प्रधानता'—ऐसा नहीं कहा जा सकता। एक को प्रधान कहने से दूसरा गौणरूप से विद्यमान ही है—ऐसी नय के वर्णन की शैली है। इसलिये वस्तु के ज्ञान बिना एक ही धर्म को लक्ष में लेकर विकास करना चाहे तो वहाँ मिथ्यानय है; उसके धर्म का विकास नहीं होता। शुद्ध चैतन्यवस्तु आत्मा अनंत धर्मों का पिण्ड है; उस वस्तु का आश्रय करने से समस्त धर्म निर्मलरूप से विकसित हो जाते हैं।

समस्त जीवों के लिये यह सामान्य अबाधित नियम है कि शुद्ध चैतन्य वस्तु के आश्रय से ही धर्म का विकास होता है; सम्यग्दर्शन के प्रारम्भ से लेकर केवलज्ञान तक का पूर्ण विकास चैतन्य स्वभावरूप शुद्ध आत्मद्रव्य के आश्रय से होता है।

एक जीव को क्रिया की प्रधानता से मुक्ति हो और दूसरे जीव को ज्ञान की प्रधानता से मुक्ति हो—इसप्रकार यदि भिन्न-भिन्न आत्माओं के भिन्न-भिन्न धर्म हों तो दो आत्मा एक ही जाति के न रहे किन्तु भिन्न जाति के हो गये; उसी प्रकार एक ही आत्मा के समस्त धर्म न रहे, किन्तु भिन्न-भिन्न धर्मानुसार भिन्न-भिन्न आत्मा हो गये।—लेकिन वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। जगत के जीवों में

जिसप्रकार ‘भव्य स्वभाव’ और ‘अभव्य स्वभाव’—ऐसे दो प्रकार के जीव हैं; उसीप्रकार कहीं अमुक जीव शुभ क्रिया की प्रधानता से मुक्ति प्राप्त करनेवाला, और अमुक जीव ज्ञान की प्रधानता से मुक्ति प्राप्त करनेवाला—ऐसे भिन्न-भिन्न स्वभाववाले जीव नहीं हैं। अनुष्ठान की प्रधानता से सिद्धि होती है—इसप्रकार जिस आत्मा को क्रियानय से लक्ष में लिया, उसी आत्मा को ज्ञाननय से देखें तो ज्ञान की प्रधानता से सिद्धि हो, ऐसा उसका धर्म है। इसप्रकार क्रियानय और ज्ञाननय—इन दोनों नयों के विषयरूप दोनों धर्म एकसाथ एक आत्मा में विद्यमान हैं। भिन्न-भिन्न नय भिन्न-भिन्न धर्मों द्वारा एक शुद्धचैतन्यस्वरूप आत्मद्रव्य को ही देखते हैं। प्रमाणपूर्वक स्वानुभव से आत्मद्रव्य प्रमेय होता है और उसके अनंत धर्मों को जाननेवाले अनंत नय हैं। एक-एक धर्म के क्रम से अनंत धर्मों को जानने जाये तो अनंत काल लगेगा, अर्थात् मात्र भेद के लक्ष से कभी वस्तुस्वरूप नहीं जाना जा सकता; किन्तु धर्म और धर्मी के अभेदरूप वस्तु का अनुभव करने से प्रमाण ज्ञान विकसित हो जाता है और अनंत धर्म प्रतीति में आ जाते हैं। फिर साधकदशा में अपना विशेष प्रयोजन सिद्ध करने के लिये साधक जीव नय द्वारा धर्मों को मुख्य गौण करके वस्तु की साधना करता है। एक धर्म को मुख्य करके जानते हुए साथ ही पूर्ण वस्तु को भी लक्ष में रखता है। अज्ञानी तो एक धर्म को जानते हुए पूर्ण वस्तु को लक्ष से निकाल देता है, इसलिये उसे एकान्त मिथ्यानय हो जाता है।

★★★

यहाँ, आत्मा किसप्रकार प्रमेय हो अर्थात् ज्ञात हो—उसकी बात चल रही है। आत्मा एक अनंत धर्मोंवाला द्रव्य है। धर्म अनंत हैं किन्तु प्रमेयरूप आत्मा एक है; समस्त धर्मों द्वारा प्रमेय होने योग्य आत्मा तो एक ही है। धर्म अनंत भिन्न-भिन्न हैं, किंतु उन सब धर्मों को धारण करनेवाला धर्मी आत्मा एक है; उस एक के लक्ष से प्रमाण ज्ञान होकर आत्मा प्रमेय होता है।

चैतन्यमूर्ति आत्मा अनंत शक्ति सम्पन्न है; उसमें सर्वथा भेद करके एक-एक शक्ति को देखने से तो आत्मा खंड-खंडरूप हो जाता है, किंतु वास्तविक रूप से ज्ञात नहीं होता। अनंत शक्तियों के एक पिण्डरूप शुद्धचैतन्य द्रव्य आत्मा को प्रतीति में लेने से उसकी अनंत शक्तियों सहित वह यथार्थ रूप से ज्ञात होता है। समयसार के २७० वें कलश में आचार्यदेव कहते हैं कि—‘अनेक प्रकार की निजशक्तियों के समुदायमय यह आत्मा नयों की दृष्टि से खंड-खंडरूप किये जाने पर तत्काल नाश को प्राप्त होता है, इसलिये मैं ऐसा अनुभव करता हूँ कि—जिसमें से

खंडों को निराकृत (दूर) नहीं किया गया है, तथापि जो अखंड है, एक है, एकान्त शांत है और अचल है—ऐसा चैतन्यमात्र तेज मैं हूँ।'—ऐसे अनुभवपूर्वक नय हों तो वे सच्चे हैं। वे नय भले ही एक धर्म को मुख्य करके जानें, किन्तु वहाँ प्रमाण नहीं हटता, इसलिये नयों के समय भी धर्मी को शुद्ध चैतन्य द्रव्य की दृष्टि नहीं छूटती। यदि अखण्ड आत्मद्रव्य की दृष्टि छोड़कर मात्र नयों से एक-एक धर्म को देखने जाये तो वहाँ अकेली भेददृष्टि से आत्मा छिन्न-भिन्न हो जाता है अर्थात् वहाँ सम्यक् आत्मा का अनुभव नहीं होता किन्तु अकेले विकल्प ही होते हैं।

आगे (प्रवचनसार में) आचार्यदेव कहेंगे कि वस्तु के अनंत धर्मों को 'अतद्भावपना मात्र' द्वारा पृथक् करना अशक्य है, अर्थात् एक वस्तु में विद्यमान अनंत धर्मों में 'जो एक धर्म है, वह दूसरे धर्मरूप नहीं है'—ऐसा परस्पर अतद्भावपना है, किंतु इतने मात्र से कहीं धर्म पृथक् नहीं हो जाते—बिखर नहीं जाते, क्योंकि वस्तुरूप से तो एकता है। भिन्न-भिन्न अनंतधर्म होने पर भी अनंत धर्मस्वरूप वस्तु तो एक ही है। नयों की पद्धति में एक धर्म को मुख्य और दूसरे को गौण किया जाये तो उससे कहीं वह धर्म वस्तु से पृथक् नहीं हो जाता। वस्तु में से एक धर्म को पृथक् करके विकास करना चाहे तो वहाँ मिथ्यात्व हो जाता है। धर्म अनंत हैं किंतु धर्मी एक है, उस धर्मी के साथ समस्त धर्म अभिन्न हैं; उस धर्मी की दृष्टि करने से उसके सर्व धर्मों का विकास हो जाता है। एक धर्म को मुख्य करके लक्ष में लेनेवाला नय भी उस धर्मस्वरूप शुद्ध चैतन्य द्रव्य को देखता है। यदि शुद्ध चैतन्य द्रव्य की दृष्टि न हो तो नय भी मिथ्या है और वचन भी मिथ्या है।

आत्मा में समस्त धर्म एकसाथ आत्मा के आश्रय से ही विद्यमान हैं, और वे सब एकसाथ अपना-अपना कार्य करते हैं। आत्मद्रव्य परिणमित होने से उसके समस्त धर्म भी प्रतिक्षण परिणमित हो रहे हैं। एक क्षण एक धर्म और दूसरे क्षण दूसरा—इसप्रकार क्रमानुसार यह धर्म नहीं हैं।

* एक जीव गर्भ काल से लेकर आठ वर्ष की उम्र में आत्मज्ञानपूर्वक मुनि होकर, अन्तर्मुहूर्त में ही शुक्लध्यान से केवलज्ञान प्राप्त करके सिद्धि साधता है।

* दूसरा जीव आत्मज्ञानपूर्वक मुनि होने के पश्चात् करोड़ों-अरबों वर्ष तक चारित्र का पालन करता है और फिर शुक्लध्यान से केवलज्ञान प्राप्त करके सिद्धि साधता है।

—तो वहाँ आठ वर्ष में मुक्ति प्राप्त करनेवाले जीव में ज्ञान की प्रधानता से सिद्ध होने का धर्म, और करोड़ों वर्ष तक चारित्र का पालन करके फिर मुक्ति प्राप्त करनेवाले जीव में क्रिया की

प्रधानता से सिद्धि होने का धर्म—ऐसा नहीं है। दोनों जीवों में वे दोनों धर्म विद्यमान हैं, किन्तु नय उन्हें मुख्य-गौण करके जानते हैं। यहाँ तो वास्तव में नयों द्वारा स्वयं अपने आत्मा को ही देखने की बात है। प्रमाण ज्ञान अथवा नय द्वारा स्वयं अपने आत्मा को अंतर में शुद्ध चैतन्यस्वरूप देखना ही सच्चा तात्पर्य है।

आत्मा के शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप का भान रखकर भूमिकानुसार नैमित्तिक शुभराग का ज्ञान कराने के लिये अनुष्ठान की प्रधानता से सिद्धि है; किन्तु यदि साक्षीपना आदि धर्मों को तोड़कर मात्र अनुष्ठान से-शुभराग से-ही सिद्धि होना माने तो वह क्रियानय भी मिथ्या है; क्योंकि अनुष्ठान की प्रधानता से सिद्धि होती है—ऐसे एक ही धर्म को लक्ष में लिया तो उस समय राग का अकर्ता-साक्षी रहे—ऐसा कर्तृधर्म (साक्षीस्वरूप धर्म) कहाँ गया? विकार का अभोक्ता रहे—ऐसा अभोक्ता धर्म कहाँ गया? स्वभाव के बड़प्पन में जो राग को बड़प्पन नहीं देता—ऐसा अनीश्वरधर्म अथवा प्रभुत्व धर्म कहाँ गया? राग के कारण बिना स्वयं स्वतंत्ररूप से मोक्ष करे—ऐसा कर्ता-धर्म कहाँ गया? अन्य साधन के बिना स्वयं स्वभाव से ही मोक्ष का साधन हो—ऐसा करणधर्म कहाँ गया? इसलिये अनंत धर्मोंवाले शुद्ध चिन्मात्र आत्मद्रव्य को प्रमाणपूर्वक स्वानुभव से न जाने तो उसके एक भी धर्म का सच्चा ज्ञान नहीं होता।

साधकदशा में शुभरागरूप अनुष्ठान भी होता है, करना नहीं पड़ता-आ जाता है और क्रियानय से उस निमित्त का ज्ञान कराने के लिये अनुष्ठान की प्रधानता से सिद्धि होना कहा जाता है—ऐसा एक धर्म है—किन्तु वह क्रियानय किसे देखता है? क्या मात्र शुभराग को ही देखता है अथवा आत्मद्रव्य को भी? वह धर्म आत्मा का है, इसलिये क्रियानय मात्र राग को ही नहीं देखता, किन्तु शुद्ध चिन्मात्र आत्मद्रव्य के ज्ञानसहित राग को भी जानता है।—इसप्रकार आत्मद्रव्य को देखने से उसके अवलम्बन द्वारा साधक को सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रादि धर्म विकसित होते जाते हैं और मुक्तदशा प्रगट हो जाती है।—यह सम्यक् नयों से आत्मा को देखने का फल है।

—इसप्रकार ४२ वें क्रियानय से आत्मा का वर्णन पूरा हुआ।

★★★

[४३] ज्ञाननय से आत्मा का वर्णन

ज्ञाननय से देखने पर, विवेक की प्रधानता से सिद्धि सधती है—ऐसा आत्मद्रव्य है। जिसप्रकार कोई रत्नों की परख करनेवाला जौहरी घर के कोने में बैठा हो और मुट्ठी भर चने देकर

किसी गड़रिये से चिन्तामणि रत्न खरीद ले; उसीप्रकार आत्मा विवेक द्वारा अर्थात् सम्यक्ज्ञान द्वारा चैतन्य चिन्तामणि भगवान आत्मा को पहिचानकर, उसमें अन्तर एकाग्रता द्वारा क्षणमात्र में सिद्धि प्राप्त करता है। वहाँ विवेक की प्रधानता से अर्थात् सम्यग्ज्ञान की प्रधानता से आत्मा की सिद्धि हुई—ऐसा ज्ञाननय जानता है। ज्ञान की प्रधानता से मुक्ति हुई—ऐसा देखनेवाला ज्ञाननय, अथवा क्रिया की प्रधानता से मुक्ति हुई—ऐसा देखनेवाला क्रियानय—वे दोनों नय शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मा में ही देखते हैं और ज्ञान को आत्मोन्मुख करके एकाग्र करते हैं।

मात्र ज्ञानधर्म को मानने से मुक्ति नहीं हो जाती, किन्तु ज्ञान के साथ ही दूसरे आनन्दादि अनंत धर्म आत्मा में हैं;—ऐसे आत्मस्वभाव की दृष्टि करके उसके अवलम्बन से ही मुक्ति होती है। वहाँ ज्ञाननय के समय ऐसा कहा जाता है, कि विवेक की प्रधानता से सिद्धि होती है। किन्तु वह ज्ञाननय कब होता है?—तो कहते हैं कि पूर्ण आत्मा की दृष्टि हुई हो तब। पूर्ण आत्मस्वभाव के ज्ञानपूर्वक ही 'ज्ञाननय' सिद्ध होता है; इसके अतिरिक्त ज्ञाननय सिद्ध नहीं होता। अज्ञानी को एक भी नय नहीं होता, क्योंकि यह सर्व नय तो प्रमाण ज्ञान के अंश हैं; प्रमाण के बिना नय सच्चे नहीं होते। जिसे अनंत धर्मोंवाली शुद्ध चैतन्य वस्तु का प्रमाणज्ञान नहीं हुआ है, उसे उसके एक-एक धर्म का ज्ञान भी सच्चा नहीं होता।

यह कौन सा विषय चल रहा है? ....जिसे स्वर्गादि संयोगों को प्राप्त करने की भावना नहीं है किन्तु आत्मा का स्वरूप जानकर उसी को प्राप्त करने की भावना है—ऐसे जिज्ञासु शिष्य ने पूछा कि—हे भगवान! यह आत्मा कौन है... और कैसे प्राप्त होता है? वह समझाइये। प्रभो! अनादि से जिसे नहीं जाना है—ऐसे आत्मा का स्वरूप जानकर, मैं उसकी प्राप्ति करूँ और संसार परिभ्रमण का अन्त आकर मुक्ति प्राप्त हो—ऐसा स्वरूप मुझे बतलाइये। ऐसी जिज्ञासावाले शिष्य को आचार्यदेव आत्मा का स्वरूप और उसकी प्राप्ति का उपाय बतलाते हैं; उसका यह वर्णन चल रहा है। यदि आत्मा के वास्तविक स्वरूप को पहिचाने तो उसमें एकाग्र होने से उसकी प्राप्ति करे अर्थात् मुक्ति हो जावे। आत्मा का स्वरूप न जाने तो उसकी प्राप्ति कहाँ से होगी? इसलिये जिसे संसार परिभ्रमण से छूटना हो और आत्मा की मोक्षदशा प्राप्त करना हो, उसे आत्मस्वरूप को पहिचानना चाहिये।

आत्मा में एक साथ अनंत धर्म हैं; अनंत धर्म होने पर भी वे सब चैतन्य सामान्य से व्याप्त हैं, इसलिये शुद्ध चैतन्यस्वरूप से आत्मा का अनुभव करने से वह यथार्थतया ज्ञात होता है; शुद्ध चैतन्य मूर्ति आत्मा अनन्त धर्मों को धारण करनेवाला है, उसी के अवलम्बन से मोक्षमार्गरूप धर्म होता है,

इसके अलावा अन्य किसी के अवलम्बन से धर्म नहीं होता। आत्मा के स्वरूप का सभी पक्षों से अविरुद्ध निर्णय करके, श्रुतज्ञान को अन्तरोन्मुख करके स्वानुभव द्वारा आत्मा को जानने पर उसमें एकाग्रता से सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होकर मुक्ति होती है; उसका नाम शुद्धात्मा की प्राप्ति है। श्रद्धा अपेक्षा से तो चौथे गुणस्थान में सम्यग्दृष्टि को भी शुद्धात्मा की प्राप्ति हो गई है—उसकी प्रतीति में शुद्ध आत्मा आ गया है; किन्तु सम्पूर्ण शुद्ध आत्मा की प्राप्ति तो मुक्तदशा में है। उसकी प्राप्ति के लिये साधक जीव बारम्बार शुद्ध चैतन्यद्रव्य की ओर एकाग्र होकर उद्यम करता है। वह साधक जीव कैसे-कैसे नयों से आत्मा को कैसा जानता है—उसका यह वर्णन है। वह प्रमाण से देखे अथवा नय से देखे, किन्तु अंतर में अपने आत्मा को शुद्ध चैतन्यमात्र स्वरूप देखता है और उसी के आश्रय से शुद्धता को साधता है—यह बात अनेक बार स्पष्टरूप से कही जा चुकी है।

साधक को क्रियानय का उपयोग हो, उस समय भी 'ज्ञान की प्रधानता से सिद्धि होती है'—ऐसे इस धर्म का ज्ञान भी साथ ही वर्तता है और शुद्ध चैतन्य द्रव्य पर ही दृष्टि वर्तती है—यह बात ४२ वें नय के वर्णन में विस्तारपूर्वक कही जा चुकी है, तदनुसार सर्वत्र समझना चाहिये।

—यहाँ ४३ वें ज्ञान नय से आत्मा का वर्णन पूरा हुआ।

शाश्वत् तीर्थ सम्मेदशिखरजी धाम की यात्रा के लिये पूज्य गुरुदेव का मंगल विहार

सिद्धि प्राप्त अनंत सिद्धभगवंत को नमस्कार! सिद्धि साधक और सिद्धिपंथ प्रवर्तक सत्पुरुष श्री गुरुदेव को नमस्कार।

आत्मा का अंतिम ध्येय जो सिद्ध पद, उसे अनंत जीव प्राप्त कर चुके हैं; जिस स्थान से मुख्यतया तीर्थकर सिद्धिपद प्राप्त करते हैं—उस स्थान को सिद्धिधाम-सिद्धक्षेत्र कहा जाता है—श्री सम्मेदशिखरजी भारत का शाश्वत सिद्धिधाम है। अनंतों तीर्थंकर यहाँ से मुक्ति गये-और जायेंगे। सिद्धिपद-प्राप्ति की भावनावाले भव्य जीवों को उस सिद्धिधाम की यात्रा का भाव भक्ति -उत्साहपूर्वक आता ही है।

पूज्य गुरुदेव जिसप्रकार हम सबको सिद्धि का मार्ग दर्शाते हैं, उस प्रकार शाश्वत सिद्धिधाम (सम्मेदशिखरजी) भी दर्शायें, ऐसी भक्तों की भावना थी, स्वामीजी से प्रार्थना भी की जाती थी, मंगल दिन भक्तों की वह भावना सफल हुई और पूज्य स्वामीजी ने संघ सहित श्री सम्मेदशिखरजी धाम की यात्रा में पधारने की स्वीकृति दे दी। इस शुभ संकेत से भारत में स्थान-स्थान पर हर्ष छा गया।

कार्तिक सुदी १२ के दिन सुवर्णपुर जिनमंदिर में श्री नेमिनाथ भगवान की वेदी प्रतिष्ठा का भव्य महोत्सव हुआ, और तुरंत ही कार्तिक सुदी पूर्णिमा रविवार... अष्टाह्निका के मंगल दिन... आज पूज्य गुरुदेव सम्मेदशिखरजी धाम के लिये सोनगढ़ से मंगल विहार करते समय श्री सीमंधरनाथ भगवान के दर्शन बड़ी विनय भक्ति से कर रहे थे, मानों प्रियपुत्र, पिताजी के पास से यात्रा के लिये विदा लेने के लिये आया....। बड़ी भक्ति की भावना से आर्द्र चित्त होकर गंभीर नाद से उत्तम स्तुति की बाद भगवान श्री नेमिनाथ के दर्शन किये। प्रभात के उपशान्त वातावरण में वैराग्यरस से झुके हुए वर नेमिनाथ परमात्मा को एकाग्रता से अवलोकन करते रहे... और वैराग्य के प्रवाह से हृदय में विशेष उत्साह से पावन हुए, वहाँ से मानस्तंभस्थ गगन विहारी विदेहीनाथ भगवान सीमंधरनाथ के दर्शन किये। बाद समवशरण में दर्शन किये।

पूज्य स्वामीजी ने स्वाध्याय मंदिर में आकर कहा कि आत्मा में अनंत धर्म हैं... किन्तु सर्व

धर्म नहीं हैं, यदि आत्मा में सर्व धर्म हो तो परद्रव्य के धर्म भी आत्मा में आ जायें। अर्थात् आत्मा, पर के साथ एकमेक हो जाये। किन्तु ऐसा नहीं है, आत्मा सदा पर से पृथक् है; इसलिये आत्मा में पर के धर्म नहीं हैं परन्तु आत्मा में सर्वज्ञता और सर्वदर्शीपना है ही।

परद्रव्य का द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव का आत्मा में तीनों काल अभाव है परन्तु अपने अनंत चतुष्टय से वह परिपूर्ण है। इसप्रकार पर से भिन्न और अपने स्वभाव से चतुष्टय से अभिन्न अपने को पहिचानकर उसे व्यक्त करके अनंत जीव सिद्धपद को पा चुके। अपना स्वभाव चतुष्टय प्रगट करके अनंतों तीर्थंकर श्री सम्मेदशिखर धाम से मोक्ष पधारे... उस सम्मेदशिखरजी तीर्थ की यात्रा करने के लिये यह विहार होता है, इतना कहकर के मुमुक्षुओं के हर्षनाद के बीच अनंत चतुष्टय स्वरूपाय नमः ऐसे वचन पूर्वक पू० कानजी स्वामी ने शाश्वत सिद्धिधाम प्रति शीघ्रता से पैर चलाये, मंगल विहार का प्रारम्भ हुआ।

❀❀❀

सम्मेदशिखरजी की यात्रा के लिये पू० गुरुदेव के विहार-महोत्सव के समय भक्तों में भारी उमंग आनन्द उल्लास छा रहा था।... सुवर्ण प्रभात अद्भुत शोभा से खिल रहा था, थोड़ा चलकर आश्रम के पास आते समय पू० गुरुदेव एकाएक स्थिर हो गये... और भक्तों को आश्चर्य हुआ—तो स्वामीजी मानस्तंभ के सामने दृष्टि लगाकर बोले कि—देखो, भगवान कैसे दिख रहे हैं!! भक्तों को यह दृश्य देखकर बड़ा आनन्द हुआ। पूज्य गुरुदेव भावपूर्वक हाथ जोड़कर भगवान को देख रहे थे। मानों-यात्रा के लिये भगवान के पास से जाने की आज्ञा ले रहे हैं और भगवान मंगल आशीर्वाद पूर्वक विदा दे रहे हों!

पू० गुरुदेव तो तेजी से चलने लगे और भक्तजन भी बड़े उत्साह पूर्वक पीछे-पीछे चल रहे थे, सुवर्णपुरी के मध्य चौक में पू० गुरुदेव ने मांगलिक शब्द सुनाये और भक्तजन विदा होकर मंगल गीत गाते-गाते वापिस आये।

''गुरुजी के विहार जयजयकार विचरे मंगलकारी....''

'स्वामीजी के साथ चलनेवाले गाते थे कि—

चलिये चलिये सब हिल-मिल करके आज श्री शिखरजी जइये....

इसप्रकार भक्ति से गाते-गाते जय-जयकार पूर्वक सम्मेदशिखरजी को याद करते-करते चलते थे। बीच में वृक्षों की घाटी और पहाड़ी के रमणीय दृश्य देखने पर शिखरजी धाम के पुनीत

दृश्य याद आते थे।

सोनगढ़ से विहार करके वल्लभीपुर आये। जो बहुत प्राचीन नगर है। वल्लभीपुर के राजासाहब ने पूज्य गुरुदेव का स्वागत और सन्मान किया। दरबारगढ़ में गेस्ट हाउस में स्थान दिया। दोपहर को पू० गुरुदेव के प्रवचन में हजारों श्रोता एकाग्रचित्त से सुनते थे। पद्मनंदि पंचविंशतिका एकत्व अधिकार की प्रथम गाथा पर मंगल प्रवचन हुआ।

रात्रि चर्चा में वल्लभीपुर के राजा श्री प्रवीणसिंहजी ने प्रश्न किया:—'इस जीव को किसी भी निमित्त कारण न होने पर भी बहुत प्रसन्नता दिखती है और कभी बिना कारण बहुत खेदखिन्नपना हो जाता है, उसका क्या कारण होगा?'

उत्तर में कहा कि:—जब जीव को मंद कषायरूप शान्त परिणाम हों और उस प्रकार का सातावेदनीय का उदय हो तो ऐसी प्रसन्नता का भास होता है, परन्तु यह कुछ सच्ची प्रसन्नता नहीं है। जीव अपने अकषाय आनन्द का भूल गये हैं, इसलिये मंदकषाय में उसे प्रसन्नता दीखती है। आत्मा तो अतीन्द्रिय ज्ञानमय है; उसका विपरीत अभिप्राय रहित होकर सच्चे भानपूर्वक अन्तर्मुख होने से जो अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन (अनुभवन) हो, वही सच्ची प्रसन्नता है। अखंड ज्ञानस्वरूप को पकड़ने पर जो आनन्द आता है, वह अतीन्द्रिय आनन्द कहा जाता है और उसी में आत्मा की सच्ची प्रसन्नता है, अन्य प्रकार से जो प्रसन्नता दिखती है, वह सच्चा आनन्द नहीं है।

वल्लभीपुर में विहार की शुभ शुरुआत में ही पूज्य गुरुदेव के चरणों में राजाजी ने सिर झुकाकार भारी प्रेम से वंदन किया, यह भी मंगल सूचक प्रसंग है।

गुजराती कार्तिक वदी १ सोमवार ता० १९-१२-५६।

सवेरे उठकर श्री जिनेन्द्र भगवान का स्तवन किया और पू० गुरुदेव ने वल्लभीपुर से पाटना की ओर विहार किया। बीच में मूलधरइ गाँव आया, वहाँ नई स्कूल में पू० गुरुदेव के पाद प्रवेश कराकर स्कूल का उद्घाटन हुआ। पाटणा गाँव में बड़े भारी उमंग से स्वागत हुआ।

यहाँ शान्तिधाम में हमारा ठहरना हुआ था। मुनियों के निवास स्थान के समान शान्तिधाम में पू० गुरुदेव के साथ रहने में हमको बहुत शान्ति होती थी। विहार के समय प्रथम से ही भक्तगण ऐसी भावना भा रहे थे कि मानों कोई महान आचार्य अथवा मुनियों के संग में हम विचरते हैं—ऐसी उत्तम उत्तम भावना द्वारा यात्रा का पैदल विहार पू० गुरुदेव के साथ करना है और ऐसे छोटे गाँव के शान्त वातावरण में पू० गुरुदेव के समीप बैठने पर यह भावना स्मरण में आ ही जाती थी।

दोपहर के समय, पास में कुआ था, एक किसान अपने बैल को बड़ी डोल (बाल्टी) लेकर जल पिलाने के लिये आया। बैल पानी पीकर तृप्त हुआ—गुरुदेव यह सब देख रहे थे... कहा कि—अहो ! मनुष्य पर्याय की योग्यता दुर्लभ है। यह तो पशु है, उसे तो ऐसा लग रहा है कि मुझे तृषा लगी है और मैं ही जल पी रहा हूँ, जल पीने से मुझे तृप्ति होती है, किन्तु यह शरीर मेरा नहीं है; मैं तो इस शरीर से और पानी से पृथक् ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ—ऐसा विवेक उसे नहीं है। जिसप्रकार उसे हित-अहित का स्वरूप क्या है, उसका ख्याल नहीं है; वैसे ही मनुष्य होकर भी जो देहादि से भिन्न आत्मा के विचार विवेक नहीं करते हैं, वह जीव इस पशु जैसे ही हैं।

पू० गुरुदेव के निकट में ऐसे प्रसंग पाकर अनेकबार आत्महित की विशेष भावना जागृत रहती है, आत्महित की प्रेरणा मिलती ही है।

शाम के समय गुरुदेव बड़े तालाब के किनारे पर खड़े थे, उस समय मानों आनन्द सरोवर के किनारे पर चैतन्य हंस केलि कर रहा हो, ऐसा सुंदर दृश्य लग रहा था।

रात्रि चर्चा में कहा कि कल बखाला गाँव आयेगा। वह पवित्र आत्मा चंपा बहिन का गाँव है, ऐसा कहकर बहिन श्रीबेन का पवित्र परिचय कहा।

कार्तिक वदी २-३ ता. २०-१२-५६। सवेरे श्री आराधना पाठ स्तुति की और पू० गुरुदेव पाटना से विहार करके बखाला पधारे, गाँव ने बड़ी धामधूम से, उमंग से भारी स्वागत किया। राजदरबार के उतारे में ठहरने का था-वहाँ आकर सुंदर मांगलिक पाठ सुनाया और कहा कि—आत्मा का आनंद, वह उत्तम मंगल है। जिस भाव से आत्मा का आनन्द प्रगट हो, वह मंगल है। दोपहर को प्रवचन में हजार करीब श्रोताओं ने लाभ लिया। बाद भाईलाल भाई के घर पर स्वाध्याय स्थान पर समयसारजी शास्त्र की स्थापना के लिये पू० गुरुदेव पधारे। रात्रि चर्चा में गाँव के भाइयों ने बड़ी संख्या में आकर लाभ लिया।

ता. २१-१२-५६ पोलारपुर में पर्दापण हुआ। वहाँ जैन शिक्षणवर्ग के उत्साही अध्यापक श्री हीराचंद भाई थे। उन्होंने बड़े स्नेह से स्वागत किया। बाद गुरुदेव ने मांगलिक का पाठ और अर्थ सुनाया।

ता. २१-१२-५६ पोलारपुर से गुरुदेव धंधुका शहर में पधारे। वहाँ श्री द्वारकादास भाई पटेल ने प्रेमपूर्वक सारे संघ का स्वागत किया और सब सुविधायें दीं। और गाँव के भाइयों ने भी प्रेमपूर्वक भाग लिया। जहाँ-जहाँ स्वामीजी का आगमन होता था, वहाँ सब गाँववाले बोलते रहते

थे कि—अहो! पूज्य कानजी स्वामी सम्मेदशिखरजी की यात्रार्थ पधार रहे हैं—उसी में हमारा आँगन में भी लाभ प्राप्त हुआ। ऐसी ऐसी भावना से लोग भारी उत्साह आनंद प्रगट करते थे। व्याख्यान में सभी ने बहुत रस लिया। एक बात यह भी कही कि—हे जीव! तीर्थंकर भगवान का टेलीफोन आया है कि जैसा हमारा आत्मा है, वैसा ही ज्ञान और आनंदस्वरूप तेरा आत्मा है, उसे तू पहिचान। फिर कई अच्छे दृष्टांत देकर सम्यग्ज्ञान प्राप्त करके आत्मा में मंगल साँथिया पूरने की बड़ी अच्छी बात कही थी।

इसप्रकार जैनधर्म का मंगल संदेश का प्रचार और प्रसार करते हुये अपने पुनीत चरणों द्वारा पृथ्वी को पावन कर करके पू० गुरुदेव शाश्वत् तीर्थधाम सम्मेदशिखरजी की यात्रा के लिये विहार कर रहे हैं। पूज्य गुरुदेव का विहार भव्य जीवों को कल्याणकारक हो... जयवंत हो।

पूज्य श्री कानजीस्वामी महाराज की संघ सहित श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा का प्रोग्राम

माइल	गाँव या शहर का नाम	प्रवास	संघ की ता०	समय	पूज्य गुरुदेव की ता०	समय
	मथुरा	रवाना	१५–२–५७	सुबह	१५–२–५७	सुबह
६०	फीरोजाबाद	पहुँचना	,,	,,	१५–२–५७	,,
	,,	रवाना	१६–२–५७	,,	१६–२–५७	,,
४०	बटेश्वर (शौरीपुर)	पहुँचना	,,	,,	१६–२–५७	,,
	,,	रवाना	,,	शाम	१७–२–५७	,,
११८	मैनपुरी	पहुँचना	,,	रात्रि	१७–२–५७	,,
	,,	रवाना	१७–२–५७	शाम	१८–२–५७	,,
१०९	कानपुर	पहुँचना	,,	रात्रि	१८–२–५७	,,
	,,	रवाना	१९–२–५७	सुबह	१९–२–५७	,,
५०	लखनऊ	पहुँचना	,,	,,	१९–२–५७	,,
	,,	रवाना	२०–२–५७	दोपहर	२०–२–५७	दोप०

माइल	गाँव या शहर का नाम	प्रवास	संघ की ता०	समय	पूज्य गुरुदेव की ता०	समय
९१	रत्नपुरी होकर अयोध्या	पहुँचना	,,	शाम	२०-२-५७	शाम
	,,	रवाना	२१-२-५७	शाम	२२-२-५७	सुबह
१३०	बनारस	पहुँचना	,,	रात्रि	२२-२-५७	,,
	,,	रवाना	२५-२-५७	सुबह	२५-२-५७	,,
१००	डालमियानगर	पहुँचना	,,	,,	२५-२-५७	,,
	,,	रवाना	२६-२-५७	,,	२६-२-५७	,,
४६	आरा	पहुँचना	२६-२-५७	सुबह	२६-२-५७	सुबह
	,,	रवाना	२७-२-५७	,,	२७-२-५७	,,
३८	पटना	पहुँचना	,,	,,	२७-२-५७	,,
	,,	रवाना	२८-२-५७	,,	२८-२-५७	,,
१००	बिहार होकर राजगृही	पहुँचना	,,	,,	२८-२-५७	,,
	,,	रवाना	२-३-५७	दोपहर	२-३-५७	दोप०
२०	कुंडलपुर नालंदा होकर पावापुरी	पहुँचना	,,	शाम	२-३-५७	शाम
	,,	रवाना	५-३-५७	सुबह	५-३-५७	सुबह
५६	गुणावा होकर गया	पहुँचना	,,	,,	५-३-५७	सुबह
	,,	रवाना	६-३-५७	सुबह	६-३-५७	सुबह
१०७	मधुवन पारसनाथ	पहुँचना	,,	,,	६-३-५७	सुबह

इस प्रोग्राम में समयानुसार फेरफार करने की जरूरत होगी तो किया जायगा।

श्री जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

पू० कानजी स्वामी मुंबई नगरी में जैनधर्म का बड़ा भारी उद्योत करते हुए ता. १६-१-५७ के दिन विहार करके गजपंथा-मांगीतुंगी पधारे हैं।

परमपूज्य श्री कानजी स्वामी के आध्यात्मिक वचनों का अपूर्व
लाभ लेने के लिये निम्नोक्त पुस्तकों का—

अवश्य स्वाध्याय करें

मूल में भूल	।।।)
श्री मुक्तिमार्ग	॥=)
श्री अनुभवप्रकाश	॥)
श्री पंचमेरु आदि पूजासंग्रह	।।।)
समयसार प्रवचन भाग २	५।)
समयसार प्रवचन भाग ३	४॥)
प्रवचनसार	५)
अष्टपाहुड़	३)
चिद्विलास	१=)
आत्मावलोकन	१)
मोक्षमार्ग–प्रकाशक की किरणें प्र०	१।=)
द्वितीय भाग	२)
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला प्र०	॥–)
द्वितीय भाग	॥–)
जैन बालपोथी	।)
सम्यग्दर्शन	१॥=
द्वादशानुप्रेक्षा (स्वामि कार्तिकेयानुप्रेक्षा)	२)
जैन तीर्थ पूजा पाठ संग्रह कपड़े की जिल्द	१।=)
भेदविज्ञानसार	२)
अध्यात्मपाठसंग्रह	५)
समयसार पद्यानुवाद	।)
निमित्तनैमित्तिक संबंध क्या है ?	=)
स्तोत्रत्रयी	॥)
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	=)
'आत्मधर्म मासिक' लवाजम–	३)
आत्मधर्म फाइलें १–२–३–५–६–७–८–१० वर्ष	३।।।)

हिन्दी आत्मधर्म की फाइलें

वर्ष १, २, ३, ५, ६, ७,, ८, १० यह आठ फाइलें एक साथ लेने वालों को ३०–०–० के बदले २०–०–० में दी जायेंगी।

[डाकव्यय अतिरिक्त]

मिलने का पता—
श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक—नेमीचन्द बाकलीवाल, कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज (किशनगढ़)
प्रकाशक—श्री जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के लिये—नेमीचन्द बाकलीवाल।

स्वभाव के अनंत पुरुषार्थ बिना यदि पार हो सकते होते तो समस्त जीव मोक्ष में पहुँच जाते! पुरुषार्थ के बिना यह समझ में नहीं आ सकता। यह समझने के लिये स्वभाव की रुचिपूर्वक धैर्य से सतत् प्रयत्न करना चाहिये। जिसने आत्मस्वभाव का भान किया; उसे वह भान सदैव बना रहता है; उठते–बैठते, खाते–पीते कभी उसका विस्मरण नहीं होता। ऐसा आत्मभान सदैव बना रहे—यही करना है। ऐसा ज्ञान होने के बाद ज्ञानी को वह रटना नहीं पड़ता, उनकी सहजदशा ही ऐसी हो जाती है।

[६]

अहो, यह बात समझने के लिये अंतर में अपूर्व रुचिपूर्वक आत्मा का अभ्यास करना चाहिये। स्त्री का प्रेमी उसकी बात कितनी रुचिपूर्वक सुनता है!—तथापि वहाँ कोई सुख नहीं है। यह तो आत्मा की मुक्ति प्राप्त हो—ऐसी बात है; मोक्षाभिलाषी को यह समझने के लिये अंतर में रुचि एवं उत्साह होना चाहिये। सम्यग्दर्शन की यह रीति समझे बिना कहीं अंत या उद्धार नहीं है। जो जीव इसे समझेगा, वह मोह का नाश करके, क्रमशः अकंपरूप से स्वभाव में आगे बढ़कर चारित्रदशा प्रगट करके, केवलज्ञान तथा सिद्धपद को प्राप्त करेगा।

प्रभु के मार्ग में....

जिसका हृदय परिवर्तन हो, उसे किसी से पूछने नहीं जाना पड़ता; उसका अंतर निःशंक साक्षी देता है कि अब हम प्रभु के मार्ग में चल रहे हैं; सिद्धों का सन्देश आ चुका है; अब अल्पकाल में सिद्ध होकर ही रहेंगे; उसमें फेरफार नहीं हो सकता।

सम्यग्दर्शन प्रगट होने से आत्मा का अनुभव होता है। जैसा अनुभव सिद्ध भगवान को होता है, वैसा ही चौथे गुणस्थान में सम्यक्त्वी जीव को होता है। सिद्ध को पूर्ण अनुभव होता है और सम्यक्त्वी को अंशतः होता है, किंतु जाति तो वही है। सम्यक्त्वी आनंद सागर के अमृत का अपूर्व स्वाद ले रहा है, आनन्द स्रोत में निमग्न है।

जिसे स्वाद श्रद्धा प्रगट हो, उसका पूरा अंतर ही बदल जाता है, हृदय परिवर्तन हो जाता है, अंतर में उथल–पुथल हो जाती है, अंधे से नेत्र वाला बन जाता है। जिसके अंतर में ज्योति जागृत हो, उसकी दशा की दिशा ही पलट जाती है। *[समयसार प्रवचन से]*

आत्मा की झंकार

अहो! भव रहित वीतरागी पुरुषों की मधुर वाणी कानों में पड़ते ही आत्मार्थी जीव का आत्मा झंकृत हो उठता है... पुरुषार्थ हीन नपुंसक जीव उस वाणी का निर्णय नहीं कर सकते....

[समाधिशतक प्रवचन से] [पूज्य गुरुदेव]

सर्वज्ञ भगवान का उपदेश जीव को बाह्य विषयों से छुड़ाकर अन्तर में चैतन्य की शरण कराता है और उसी में जीव का हित है, क्योंकि चैतन्य के अनुभव से ही भव का नाश होकर मोक्ष सुख प्रगट होता है।

जिसने देह को ही आत्मा माना है, विषयों में ही जिसने सुख माना है—ऐसे मूढ़ जीव को वीतराग की वाणी प्रतिकूल पड़ती है, क्योंकि वीतराग की वाणी तो विषयों का विरेचन करानेवाली है। मूढ़ कायर जीव, विषयों की लीनता छोड़कर चैतन्य को नहीं देख सकते; वे तो चैतन्य पुरुषार्थ से रहित नपुंसक हैं, उनमें भव रहित ऐसे वीतराग की वाणी का निर्णय करने की शक्ति नहीं है।

''अहो जीवों! तुम्हारा सुख तुम में है; बाह्य विषयों में कहीं सुख नहीं है; आत्मा ही सुख स्वभावी है; इसलिये आत्मा में अन्तर्मुख होने से सुख है...'' ऐसी मधुर वाणी जहाँ कानों में पड़ती है, वहाँ तो आत्मार्थी जीव का आत्मा झंकृत हो उठता है कि—धन्य है! यह भव रहित वीतरागी पुरुष की वाणी!! आत्मा के शांत रस को बतलानेवाली यह वाणी अपूर्व है! अहो! वीतरागी संतों की वाणी परम अमृत है और वह भव रोग का नाश करनेवाली अमोघ औषधि है।—इस प्रकार आत्मार्थी का आत्मा उल्लसित हो जाता है और उसके पुरुषार्थ की दिशा स्वोन्मुख हो जाती है; विषयों में से सुखबुद्धि छूट जाती है।—उसी ने सचमुच वीतराग की वाणी का निर्णय किया है। बाह्य विषयों की या राग की प्रीतिवाला नपुंसक जीव, वीतरागी भवरहित पुरुषों की वाणी का निर्णय नहीं कर सकता।

''वचनामृत वीतरागनां परम शांतरसमूल
औषध जे भवरोगना कायर ने प्रतिकूल।''

परमप्रभावी शासनरत्न

हे परम कृपालु गुरुदेव! अध्यात्म-तेज के साथ ही साथ आपका ब्रह्मक्षेत्र भी अलौकिक है। आध्यात्मिक उपशांतरस बरसाने के लिये आप चन्द्र समान हैं... तथा ब्रह्मचर्य के अखण्ड तेज से आप सूर्यसमान हैं... आप जैसे तेजस्वी पुरुष का जोड़ मिलना इस काल कठिन है। आपका जीवन अध्यात्मरस की मस्ती तथा ब्रह्मचर्य के रंग से रंगा हुआ है.... इसलिये आप की महाप्रतापी छाया में निरंतर बसनेवाले... और आपके पावन उपदेशामृत का पान करनेवाले भव्यजिज्ञासु छोटे-छोटे बालक-बालिकाएँ भी ब्रह्मजीवन प्राप्त करें, इसमें आश्चर्य ही क्या है!!

हे धर्मपिता!... जीवन के आधार... और हृदय के हार! आपके द्वारा जो जैनशासन का पुनरुद्धार... शोभा... और अभिवृद्धि का क्या वर्णन करें? आपकी देदीप्यमान देह के सर्वांग से जिनशासन की प्रभावना के स्वर उठ रहे हैं.... तथा वीतराग धर्म का नाद गूंज रहा है। जिनशासन पर घिरे हुए मोह के बादलों को आपने गगन भेद ज्ञानगर्जना द्वारा छिन्न-भिन्न कर दिया है... और दिव्य ज्ञानप्रभा द्वारा आपने जैनशासन को जगमगा दिया है... इसलिये आप जिनशासन के 'अनमोल रत्न' हैं।

हे शासन रत्न! आपके शुभहस्त से आज सारे भारत में तात्विक वीतरागीमार्ग ऐसा जैन धर्म का झंडा अत्यन्त गौरवपूर्वक उन्नति के शिखर पर फहरा रहा है... और उस झंडे की छाया में हजारों आत्मार्थी जीव रुचिपूर्वक आ रहे हैं।

''अप्पा सो परमप्पा''

जो परमात्मा हुए, उन्हें भी पूर्वकाल में बहिरात्मदशा थी; फिर अपनी परमात्मशक्ति का श्रवण करके उसका बहुमान लाकर, उस ओर उन्मुख होने से वह बहिरात्मपना दूर हुआ और अंतरात्मपना हुआ। फिर स्वभाव में लीन होकर वे परमात्मा हुए।—इसप्रकार पहले जो बहिरात्मा थे, वे ही अपनी शक्ति के अवलम्बन से अंतरात्मा होकर परमात्मा हुए।—ऐसी परमात्मा होने की शक्ति प्रत्येक आत्मा में विद्यमान है।

पूज्य गुरुदेव सम्यक्त्व का उपाय बतलाते हैं

चर्चा में एक जिज्ञासु बंधु ने पूछा था—

विकल्प द्वारा सात तत्त्व की प्रतीतिरूप आँगन में आया—किन्तु भीतर प्रवेश नहीं किया—इसका क्या अर्थ ?

उत्तर में पूज्य गुरुदेव ने कहा था—

''मैं जीव हूँ, अजीव मुझसे भिन्न है''—इत्यादि प्रकार से विकल्प द्वारा सात तत्त्वों को जाना... किन्तु वह विकल्प, सम्यग्दर्शन का कारण नहीं है। जीव विकल्प में एकता करके उसी के वेदन में अटका रहा, किंतु विकल्प से पृथक् होकर स्वभाव के वेदन में नहीं आया, इसलिये सम्यग्दर्शन नहीं हुआ। क्योंकि सम्यग्दर्शन के आदि में (प्रारम्भ में) विकल्प नहीं है किंतु आत्मा ही है; अर्थात् विकल्प के आश्रय से सम्यग्दर्शन का प्रारम्भ नहीं होता किंतु आत्मा के ही आश्रय से सम्यग्दर्शन का प्रारंभ होता है।

अनंतबार विकल्प तक आकर उसी में अटक गया किंतु स्वभावोन्मुख नहीं हुआ, इसलिये ऐसा कहा जाता है कि आँगन में आया किंतु भीतर प्रवेश नहीं किया।

सम्यग्दर्शन के आदि में, मध्य में, या अंत में विकल्प नहीं है; अंतर्मुख होकर प्रतीति करने से आत्मा स्वयं ही सम्यग्दर्शनादि का कारण होता है, इसलिये सम्यग्दर्शन के आदि में, मध्य में और अंत में आत्मा ही है। पहले विकल्प था, इसलिये सम्यक्त्व हुआ—ऐसा नहीं है। विकल्प के समय भी निर्णय में तो यही था कि यह विकल्प मेरे सम्यक्त्व का साधन नहीं है; अभी इस विकल्प से आगे बढ़कर आत्मा की गहराई में उतरना है; अभी स्वभावोन्मुख होना है। स्वभावोन्मुख होने से आत्मा स्वयं ही साधन होकर सम्यक्त्व होता है। (—रात्रिचर्चा से)

सर्वज्ञ की आज्ञा का पालन

सर्वज्ञ अर्थात् जिन्हें परिपूर्ण ज्ञान विकसित हो गया है वे; ऐसे सर्वज्ञ परमात्मा की आज्ञा क्या है ? और उस आज्ञा का पालन करनेवाला जीव कैसा होता है ? तत्सम्बन्धी महत्वपूर्ण न्याय बिल्कुल संक्षेप में बतलाते हुए पूज्य गुरुदेव ने चर्चा में निम्नानुसार कहा था:—

❀ आत्मा ज्ञानस्वभाव है;

❀ ज्ञान का स्वभाव मात्र ज्ञातापना है।

❀ ऐसे ज्ञानस्वभाव की प्रतीति करके उसमें से भगवान ने सर्वज्ञता प्रगट की।

❀ उन सर्वज्ञ भगवान ने भी उपदेश में यही आदेश दिया है, अर्थात् ज्ञानस्वभाव की प्रतीति करके उसके आश्रय से ज्ञाता-दृष्टा रहने की ही भगवान की आज्ञा है।

❀ ज्ञानस्वभाव की प्रतीति करके ज्ञातादृष्टारूप से रहना, वह साधन;

❀ और पूर्ण केवलज्ञान प्रगट हो, वह साध्य।

❀ इसप्रकार ज्ञान में ही साधन और साध्य का समावेश हो जाता है।

—यह सर्वज्ञ भगवान के उपदेश का संक्षिप्त सार है।

❀ सर्वज्ञ भगवान के ऐसे मार्ग की प्रतीति करनेवाला जीव ज्ञातारूप से रहा; इसलिये कहीं फेरफार करने का अभिप्राय नहीं रहा,—इसप्रकार क्रमबद्धपर्याय की प्रतीति उसमें आ ही गई।

❀ ज्ञानस्वभाव का निर्णय करके ज्ञाता हुआ, फिर कौनसी भूमिका में कैसा व्यवहार होता है और कैसे निमित्त होते हैं, उन्हें भी वह ज्ञातारूप से जानता है; और उसी को उन सबका यथार्थ ज्ञान होता है, वही सर्वज्ञ की आज्ञा का पालन करता है। ज्ञाता-दृष्टारूप से सर्वज्ञ की आज्ञा का पालन करते-करते वह स्वयं भी सर्वज्ञ हो जायेगा।

❀ मैं ज्ञानस्वभाव ही हूँ—ऐसा निर्णय जिसे नहीं है, उसे सर्वज्ञ भगवान की आज्ञा की खबर नहीं है; इसलिये सर्वज्ञ भगवान के आगम के एक अक्षर का भी उसे सच्चा अर्थ नहीं आयेगा; भगवान के कहे हुए व्यवहार की तथा निमित्त की खबर नहीं पड़ेगी।

(—चर्चा से)

परमेश्वर की घोषणा

सर्वज्ञ परमेश्वर ने अपनी वाणी में वस्तु स्वरूप की ऐसी परिपूर्णता घोषित की है कि—प्रत्येक आत्मा अपने स्वभाव से परिपूर्ण परमेश्वर है; उसे किसी दूसरे की मदद की अपेक्षा नहीं है; तथा प्रत्येक जड़ परमाणु भी अपने स्वभाव से परिपूर्ण—जड़ेश्वर भगवान है; इसप्रकार चेतन और जड़ प्रत्येक पदार्थ स्वतंत्र तथा अपने से ही परिपूर्ण है; कोई तत्त्व अन्य किसी तत्त्व का आश्रय नहीं माँगता।—ऐसा समझकर अपने परिपूर्ण आत्मा की श्रद्धा तथा आश्रय करना और पर का आश्रय छोड़ना वह परमेश्वर होने का पंथ है।

[—प्रवचन से]

नया प्रकाशन

जैन सिद्धान्त प्रश्नोत्तरमाला भाग ३

जैन धर्म का तात्त्विक हार्द समझने के लिये अवश्य स्वाध्याय करें

जिसमें प्रमाण, नय, (नयाभास) निक्षेप, अनेकान्त और स्याद्वाद का स्पष्ट अर्थ—सविस्तार शास्त्रोक्त आधार से दिये हैं, और पुरुषार्थ, स्वभाव, काल, नियति और कर्म का स्वरूप, पुरुषार्थ तथा मोक्षमार्ग की चर्चा और गुणस्थान क्रम का वर्णन तथा विचारवान जीव शंका समाधान द्वारा यथार्थरूप में तत्त्व निर्णय कर सके ऐसी स्पष्ट शैली है। मूल्य ६३ नये पैसे

लागत से अर्ध मूल्य में

समयसार प्रवचन भाग तीसरा — ४॥) वाला

भेदविज्ञानसार — २) वाला

फागण सुदी २ तक अर्ध मूल्य में मिलेगा

मिलने का पता—

श्री दि० जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

पोस्टेज आदि अलग

परमपूज्य श्री कानजी स्वामी के आध्यात्मिक वचनों का अपूर्व
लाभ लेने के लिये निम्नोक्त पुस्तकों का—

अवश्य स्वाध्याय करें

मूल में भूल	।।।)	ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	२॥)
श्री मुक्तिमार्ग	॥=)	सम्यग्दर्शन	१॥=
श्री अनुभवप्रकाश	॥)	द्वादशानुप्रेक्षा (स्वामि कार्तिकेयानुप्रेक्षा)	२)
श्री पंचमेरु आदि पूजासंग्रह	।।।)	जैन तीर्थ पूजा पाठ संग्रह कपड़े की जिल्द	१।=)
समयसार प्रवचन भाग २	५।)	भेदविज्ञानसार	२)
समयसार प्रवचन भाग ३	४॥)	अध्यात्मपाठसंग्रह	५)
प्रवचनसार	५)	समयसार पद्यानुवाद	।)
अष्टपाहुड़	३)	निमित्तनैमित्तिक संबंध क्या है?	=)
चिद्विलास	१=)	स्तोत्रत्रयी	॥)
आत्मावलोकन	१)	लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	=)
मोक्षमार्ग-प्रकाशक की किरणें प्र०	१।=)	'आत्मधर्म मासिक' लवाजम-	३)
द्वितीय भाग	२)	आत्मधर्म फाइलें १-२-३-५- ६-७-८-१० वर्ष	३।।।)
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला प्र०	॥-)	शासन प्रभाव	=)
द्वितीय भाग	॥-)		
जैन बालपोथी	।)		

हिन्दी आत्मधर्म की फाइलें

वर्ष १, २, ३, ५, ६, ७,, ८, १० यह आठ फाइलें एक साथ
लेने वालों को ३०-०-० के बदले २०-०-० में दी जायेंगी।

[डाकव्यय अतिरिक्त]

मिलने का पता—
श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक—नेमीचन्द बाकलीवाल, कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज (किशनगढ़)
प्रकाशक—श्री जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के लिये—नेमीचन्द बाकलीवाल।